औकलैण्ड (न्यूजीलैन्ड) में सन् १९३४ ईसवी में दिये हुये

श्री कृष्णमूर्ति जी

के

व्याख्यानों और प्रश्नों के उत्तरों का अनुवाद

औकलैण्ड (न्यूजीलैन्ड) में सन् १९३४ ईसवी में दिये हुये

श्री कृष्णमूर्ति जी

के

व्याख्यानों और प्रश्नों के उत्तरों का अनुवाद

प्रथम वार १०००] सं० १९९३ [मूल्य ।)

प्रकाशक—
प्रो० गणपतिराय सक्सेना
नवाबगञ्ज-कानपुर ।

मुद्रक—बा० त्रिलोकीनाथ
"न्यू आर्डर प्रेस"
कानपुर ।

सूची पत्र

विषय पृष्ठ

भूमिका

कुछ वर्ष हुए जब ब्रह्मविद्या प्रचार संघ के सदस्यों में विशेष कर भारतवर्ष में जगद्गुरु के आगमन की बड़ी तीव्र उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा हो रही थी और उनके स्वागत के लिये पूर्व के तारे का संघ भी स्थापित किया गया था। कुछ लोगों का अभी तक विश्वास है कि जिन दिव्य पुरुष के अवतार की हम लोग इतने कौतूहल से प्रतीक्षा कर रहे थे वे श्रीयुत कृष्णमूर्ति ही हैं। इस मत का अभी तक प्रतिवाद अथवा खंडन भी नहीं किया गया है। परंतु कृष्णमूर्ति को आचार्य की उपाधि धारण करने की रुचि नहीं है। भगवान बुद्ध अथवा महर्षि वशिष्ठ जी के समान इनका भी कथन यही है कि मेरे कथन पर विचार करो और जो तुम्हें सत्य जान पड़े उसी सिद्धान्त को धारण करो भ्रम में मत पड़ो। कुछ भी हो कृष्णमूर्ति जी ब्रह्मविद्या के अनुपम आचार्य हैं। योगवाशिष्ठ के समान कृष्णमूर्ति का भी कथन यही है कि ब्रह्म-अनुभवगम्य है विवाद का विषय नहीं। सत्य का अनुभव न कर के उसके विषय में प्रलाप करना बुद्धिमानों का कार्य नहीं। विचार के द्वारा ही इस अविनाशी सत्ता का बोध होता है। परन्तु विचार कैसे किया जावे? इसी विषय की शिक्षा देने के लिये कृष्णमूर्ति जी संसार भर में व्याख्यान देते हुए विचर रहे हैं। कृष्णमूर्ति जी

का कथन है कि मनुष्य जाति एक है इसमें वर्ण जाति आदि का भेद कल्पित है मिथ्या है। इस मिथ्या कल्पना के आधार पर ही भेदभाव और स्वार्थ बहुत बढ़ गया है और यही संसार का व्यवहार दूषित होने का मुख्य कारण है। यदि हम लोग विचार कर के अपने व्यवहार को शुद्ध कर लें तो संसार के क्लेशों का क्षय हो जावेगा और हम लोगों को शुद्ध जीवन का अखण्ड आनन्द प्राप्त होगा ॥

यदि हमारे हृदय से भेदभाव की कल्पना निकल जावे तो स्वार्थबुद्धि स्वयमेव क्षीण हो जावेगी राग और द्वेष नष्ट हो जावेंगे और संसार में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जावेगा। परन्तु यदि हम लोग हृदय में इस सत्य का अनुभव न कर के स्वार्थ का त्याग नहीं करते तो दिव्य आचार्यों की उपासना देवताओं की पूजा अथवा महान ग्रन्थों के अध्ययन से कुछ भी लाभ न होगा।

शास्त्रों का अध्ययन विचार और सत्संग योगवाशिष्ठ में भी बुद्धि निर्मल करने के ही साधन माने गये हैं। परन्तु पुरुषार्थ के द्वारा जिस मनुष्यने अपनी बुद्धि को शुद्ध नहीं किया उसका उद्धार संसार में कोई नहीं कर सकता। संसार का वर्तमान व्यवहार स्वार्थ के आधार पर ही प्रतिष्ठित है इस कारण धर्म के नाम पर अत्याचार हो रहे हैं भेदभाव बढ़ रहा है युद्ध की प्रतिक्षण तैयारियां हो रही हैं और सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक समस्यायें बढ़ती जाती हैं। आशा है पाठकगण इस पुस्तक में दिये

हुए उपदेश पर मनन करेंगे और विचार कर के आनन्द का लाभ उठावेंगे ॥

प्रस्तुत पुस्तक न्यूज़ीलैंड देश के ओकलएड नामक नगर में सन् १९३४ में दिये हुए कृष्णमूर्ति जी के व्याख्यानों का अनुवाद है। इनके व्याख्यानों की महिमा पढ़ने, मनन करने और अनुभव करने से ही जानी जाती है। इस कारण पहिले ही से प्रशंसा करना व्यर्थ है। कृष्णमूर्ति जी के व्याख्यान गम्भीर और अलंकृत होते हैं इनका सरल भाषा में अनुवाद करना सहज नहीं है इस कारण आशा है कि अनुवाद की त्रुटियों को क्षमा कर पाठक उपदेश रूपी अमृत का पान करेंगे ॥

श्री कृष्णमूर्ति जी
के
न्यूज़ीलैण्ड में व्याख्यान
मार्च २९ सन् १९३४

मित्रगण !

मैं समझता हूँ कि संसार में प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी उलझन में पड़ा है कोई धार्मिक विवाद में फँसा है तो कोई सामाजिक समस्याओं पर विचार कर रहा है और कोई आर्थिक संकटों में उलझा है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति इन विविध प्रश्नों को सुलझाने में असमर्थ जान पड़ता है क्योंकि इन प्रश्नों का निर्णय पृथक् रूप से करने का प्रयत्न हम लोग कर रहे हैं जिसका अर्थ यह है कि यदि आप धार्मिक तत्वों पर विचार करना चाहते हैं तो आप सामाजिक तथा आर्थिक विषयों को सर्वथा अलग रख कर केवल धार्मिक तत्व की मीमांसा करना चाहते हैं अथवा यदि आप आर्थिक समस्या पर विचार करना चाहते हैं तो आप केवल उसी विषय पर मनन करके अपनी शंकाओं को निवृत्त करना चाहते हैं परन्तु मैं कहता हूँ कि इन प्रश्नों का निर्णय इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से नहीं किया जा सकता क्योंकि जब तक आप धार्मिक सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के परस्पर सम्बन्ध को न समझ लें तब तक आप धार्मिक सामाजिक

अथवा आर्थिक विषयों पर स्वतन्त्र रीति से विचार नहीं कर सकते।

संसार में जो समस्यायें प्रसिद्ध हैं वे केवल गूढ़ विकारों के लक्षण है और जीवन की अखण्डता को न जानने के कारण हम लोग आर्थिक सामाजिक और धार्मिक प्रश्नों को भिन्न २ समझते हैं इस कारण ये उलझनें बढ़ती जाती हैं। इन कष्टों से बचने के लिये जो उपाय सोचे जा रहे हैं उन पर यदि आप विचार करें तो आपको ज्ञात होगा कि इन प्रश्नों पर पृथक् रूप से बिचार किया जारहा है और धार्मिक सामाजिक तथा आर्थिक विषयों के समन्वय की ओर कभी ध्यान नहीं दिया गया। अब मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि जब तक इन प्रश्नों पर हम लोग अलग २ विचार करते रहेंगे तब तक इनके झगड़े और कष्ट बढ़ते ही रहेंगे और जब तक हम लोग सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक प्रश्नों पर समन्वय की दृष्टि से विचार नहीं करेंगे और धार्मिक सामाजिक तथा आर्थिक प्रश्ना के परस्पर सूक्ष्म गूढ़ सम्बन्ध को भली भांति न समझ लेंगे, जब तक इन तीनों प्रकार की समस्याओं का परस्पर गहन सम्बन्ध हमारी समझ में स्पष्ट रीति से नहीं आता तब तक इन में से किसी प्रश्न का निर्णय हम लोग कदापि नहीं कर सकते केवल झगड़ा ही बढ़ेगा। यद्यपि हम यह मान लें कि हम लोगों ने किसी प्रश्न का निर्णय कर लिया परन्तु वही प्रश्न दूसरे रूप में फिर उठ खड़ा होगा इस प्रकार जन्म भर हम लोग जीवन के तत्व को

बिना समझे एक उलझन से दूसरी में और एक समस्या से दूसरी में निरन्तर फँसते रहेंगे ।

धार्मिक सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का गूढ़ सम्बन्ध जानने के लिये विचार शैली का पूर्ण रूप से परिवर्त्तन करना पड़ेगा इस प्रकार सामाजिक अथवा धार्मिक संस्थाओं में कोई व्यक्ति यन्त्र की कील अथवा चक्र बन कर नहीं रह सकेगा देखिये समाज में जितने व्यक्ति हैं प्रायः सब यन्त्र की कील अथवा चक्र के समान काम कर रहे हैं वे स्वतन्त्र मनुष्य नहीं जान पड़ते केवल परिस्थति के अनुसार काम करते हैं उनका कोई कार्य अथवा विचार स्वतन्त्र नहीं परन्तु सामाजिक धार्मिक अथवा राजनैतिक विषयों का सम्बन्ध जानने के लिये व्यक्तिगत रूप से विचार करना चाहिये समाज की दृष्टि से नहीं सामाजिक अथवा धार्मिक संस्था से अलग होकर उसके गुण दोष पर बिचार करना बड़ा कठिन काम है जब सामाजिक दृष्टि त्याग कर स्वतन्त्र रूप से विचार करोगे तो तुम्हें स्पष्ट विदित हो जावेगा कि केवल लक्षणों की मीमांसा करने से कुछ लाभ नहीं हमें इन समस्याओं के मूल कारण का अनुसंधान करना चाहिये और अब तक हम लोग मूल हेतु का अनुसंधान न करके केवल प्रगट होने वाले लक्षणों के विषय में ही वाद विवाद करते रहे हैं ॥

मेरा व्याख्यान समाप्त होने पर आप लोगों में से कुछ महाशय कदाचित् यह कहेंगे कि मैंने आप लोगों को कोई नई शैली तो बताई ही नहीं जिसके आधार पर आप लोग किसी विधान को

निर्माण कर सकें अथवा जिसका आप लोग अनुकरण कर सकें परन्तु मेरे पास कोई नवीन शैली नहीं क्योंकि प्रथाओं को मैं आपत्ति का मूल समझता हूँ क्योंकि संभव है कि किसी युक्ति से आपकी विपत्ति कुछ कालके लिये टल जावे परन्तु प्रथा का आश्रय ग्रहण करने से आप उसके दास बन जाते हैं। आप लोग केवल प्राचीन प्रथा को त्याग कर इस नवीन शैली का अनुकरण करने लगते हैं और बिचार से काम नहीं लेते। किसी नई शैली की खोज से ज्ञान प्राप्त नहीं होता परन्तु वर्तमान प्रथा के गुण दोष का विचार करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसमें कितना सत्य और कितना आडम्बर है केवल पुरानी परिपाटी छोड़ कर नई संस्था स्थापित करने से अभीष्ट सिद्ध नहीं होता ॥

विचार शील मनुष्य के लिये गुण दोष की मीमांसा तथा तर्क वर्तमान प्रणाली की सत्यता और पोल जानने का मुख्य साधन है इस कारण उसका विचार विश्वास का ही नहीं उद्योग का हेतु बन जाता है। इस कारण इस व्याख्यान में जो कुछ मैं कहूं उसे यदि आप समझना चाहें तो आप लोग विचार करें क्यों कि तर्क करना आवश्यक है। शंका करना उचित ही है परन्तु हम लोगों को तर्क और मीमांसा की शिक्षा ही नहीं मिली है हम लोगों को केवल प्रतिवाद करना सिखाया गया है । जैसे यदि मैं कोई ऐसी बात कहूं जो आप लोगों की रुचि के अनुकूल न हो और मुझे आशा है कि मैं ऐसी बात कहूंगा—तो आप लोग सहज ही उसका प्रतिवाद करने लगेंगे क्यों कि मेरे कथन का मूल्य निर्धा-

रित करने की अपेक्षा प्रतिवाद सरल होगा। यदि आप लोग मेरे कथन का मूल्य जान सकें तो उसके आधार पर कार्य करना सरल होगा और इस प्रकार आपके जीवन की वृत्ति बदल जावेगी परन्तु ऐसा करना हम लोग चाहते ही नहीं इस कारण उसका प्रतिवाद करने में ही हम कौशल समझते हैं। इसका अर्थ यह है कि यदि मैं कोई ऐसी बात कहूँ जो आप लोगों की रुचि के अनुकूल नहीं तो आप लोग प्राचीन सिद्धान्तों को लेकर मेरा प्रतिवाद करेंगे और यदि मैं कोई ऐसी बात कहूं जिस से आप के चित्त में व्यथा अथवा उद्वेग उत्पन्न हो तो आप लोग इन्हीं सिद्धांतों तथा प्रणालियों का आश्रय ग्रहण कर के मेरा विरोध करेंगे और इस प्रतिक्रिया को ही आप लोग मीमांसा कहेंगे परन्तु इस विधान को मैं मीमांसा नहीं कह सकता यह तो केवल प्रतिवाद है जिस का यथार्थ मूल्य कुछ भी नहीं है॥

अब यदि आप लोग ईसाई हैं—और मैं समझता हूँ आप सब लोग ईसाई ही हैं—और मैं कुछ ऐसी बातें कहूँगा जिनको आप लोग न समझ सकें तो मेरा उद्देश्य समझने का प्रयत्न करने के बदले आप लोग प्राचीन मतों का आश्रय ग्रहण करके और प्रचलित सिद्धान्तों और गूढ़ भावनाओं के आधार पर मेरी बातों का विरोध करने लगेंगे। इस क्रिया को मैं विवेचन नहीं कह सकता यह तो कार्य की अवहेलना का कौशल मात्र है। यदि आप लोग मेरे कथनका तात्पर्य समझना चाहते हैं तो मैं आप लोगों से यही प्रार्थना करूंगा कि कृपा कर के मेरे कथन का विवेचन करें

केवल कौशल से इसका विरोध न करें। विवेचन के लिये बुद्धि की बड़ी आवश्यकता है। विवेचन का अर्थ यह नहीं है कि केवल शंका स्थापित करदी जावे अथवा कथन को मान ही लिया जावे क्योंकि ये दोनों क्रियायें बोध का अभाव प्रगट करती हैं। यदि आप केवल यह कहें कि तुम्हारा कथन मुझे मान्य नहीं है तो यह वचन भी मूढ़ विश्वास के समान ही निरर्थक होगा। विवेचन का अर्थ संगति का आरोपण नहीं प्रत्युत कहे हुए वाक्य का आशय ग्रहण करना है। यदि आप पदार्थों पर गुण दोष का आरोपण करने लगें तो आप उनके यथार्थ गुण दोष का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते और हम लोगों को गुण दोष आरोपण करना भली भांति सिखाया गया है। उदाहरण के लिये धन लीजिये। सिद्धान्त की दृष्टि से धन में कोई गुण नहीं है। धन पर जिन गुणों का आरोपण किया जाता है उन्हीं के आधार पर उसका मूल्य निर्धारित होता है, यदि धन के द्वारा आप किसी विशेष शक्ति का उपार्जन करना चाहें तो धन की सहायता से आप उसका संचय करते हैं। इस प्रकार जिस वस्तु का कोई स्वतन्त्र मूल्य नहीं उस का व्यवहारिक मूल्य आप निर्धारित करते हैं। इसी प्रकार यदि आप लोग मेरे कथन का यथार्थ आशय जानना और समझना चाहते हैं तो विवेक आवश्यक है यदि आप तत्व की खोज करना चाहते हैं और इसी विचार पर सन्तोष नहीं कर लेते कि मैंने अपने चित्त में जो भावना दृढ़ कर ली है मैं उसमें गड़बड़ नहीं करना चाहता। मैं अपने सिद्धान्तों की रक्षा करना चाहता हूं।

जो कुछ मैंने अपने मन से निर्णय कर लिया है वही मेरे लिये यथेष्ट है। इसी में मैं संतुष्ट हूं। ऐसी धारणा अत्यन्त निराशा-जनक है। तब तो आप लोग यहां केवल कौतुक से आये हैं और मेरे कथन का आप लोगों के चित्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस कारण आप लोग कहेंगे कि मेरा कथन निराधार है इसमें कोई तत्व नहीं है और इस से कोई लाभ नहीं हो सकता॥

इस कारण कृपा कर इस बात को ध्यान में रखिये कि हम लोग आज इस विषय पर विचार करना चाहते हैं कि वर्त्तमान सामाजिक और धार्मिक भावों में कितना सत्य है और कितना मिथ्यात्व है। इस मीमांसा के अवसर पर कृपा कर आप अपने व्यक्तिगत भावों का आरोपण न करें, चाहे वे मात्र ईसाई धर्म के आधार पर प्रतिष्ठित हों अथवा अन्य किसी मत के आश्रय पर, परन्तु बुद्धिपूर्वक विचार करें। विवेचन की यह क्रिया केवल मेरे कथन की मीमांसा के लिये हो नहीं जीवन की समस्त समस्याओं के लिये उपयुक्त है जिसका अर्थ यह होगा कि आप लोग सिद्धान्तों की खोज ही छोड़ देंगे और फिर ऐसे सिद्धान्त की खोज में न लगेंगे जो आप लोगों को फिर भ्रम में डाल देगा। यदि हम लोग सामाजिक धार्मिक और आर्थिक संस्थाओं में सत्य और असत्य के निर्धारण की दृष्टि से विचार करेंगे तो सत्य तथा मिथ्या भावनायें जो हम लोगों ने अपने मन में कल्पित कर ली हैं उनके विवेचन में हम लोग कुतर्क की भावनाओं से बचे रहेंगे जिनमें फंसने की आशंका रहती है॥

प्रायः आप लोग नवीन सिद्धान्त नई नीति और नूतन धार्मिक वादों की खोज में लगे रहते हैं। नई शैलियों की यह खोज क्यों होती है, यदि आपकी जिज्ञासा सत्य है तो आप यह कहेंगे कि पुरातन प्रथाओं से मुझे सन्तोष नहीं होता। परन्तु मैं कहता हूँ कि आप लोग नये सिद्धान्तों की खोज न करें उन प्राचीन मतों का ही विवेचन करें जिनके बंधन में आप लोग पड़े हैं। तब आप जान जावेंगे कि किसी मत को मानने से विचार की वह शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती जो सत्य अथवा ईश्वर अथवा और जो कोई संज्ञा आप उस तत्व की कल्पित करना चाहें उस पदार्थ के यथार्थ बोध के लिये आवश्यक है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी सिद्धान्त को मानने से आप उस अविनाशी सत्ता का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। उस परम सत्ता का बोध आप लोगों को तभी होगा जब आप लोग व्यक्तिगत उद्योग के द्वारा उस प्राचीन धर्म की मीमांसा करने लगेंगे जो अनेक युगों से चला आ रहा है और उस धर्म के सिद्धान्तों में सत्य और असत्य का निर्णय करेंगे॥

इस कारण कृपा कर यह बात ध्यान में रखिये कि मैं किसी नवीन सिद्धान्त का विन्यास नहीं कर रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि ये सिद्धान्त मन को बंधन में डालने के लिये जाल ही हैं। इनसे जिज्ञासु को कोई सहायता नहीं मिलती इनसे उसकी गति में व्याघात ही होता है। ये मतवाद भोले शिष्यों को ठगने के ही साधन हैं। प्रत्युत यदि आप स्वतंत्र होकर विचार करेंगे तो आप लोग इस बात का अनुभव करेंगे कि विचार से शंका उत्पन्न होती

है और शंका के निर्णय करने से ज्ञान उत्पन्न होगा परन्तु नवीन मत को ग्रहण करने से आप के चित्त में केवल प्रमाद का आविर्भाव होगा और मोह के वश में पड़ कर आप लोग मनन छोड़ कर कठपुतली के समान उस नवीन मत के अनुयामी होकर रह जावेंगे ॥

इस कारण हम लोगों का यह जिज्ञासा करना चाहिये कि प्रचलित धार्मिक और समाजिक संस्थाओं के सिद्धान्तों में कितना सत्य और कितना असत्य है। सत्य और असत्य का निर्णय करने के लिये हमें यह जान लेना चाहिये कि इन मतों का अधार क्या है ? धर्म से मेरा आशय उन सिद्धान्तों के समुच्चय का है जिनके अधार पर समाज के उच्चतम आदर्श प्रतिष्ठित हैं। मुझे आशा है कि आप लोग मेरा यह सब कथन समझते हैं। मेरा तात्पर्य प्रचलित धर्म से है अभीष्ट सिद्धान्तों से नहीं। इन प्रचलित मतों का अधार क्या है ? किन सिद्धान्तों पर ये प्रतिष्ठित हैं। यदि आप इन विषयों पर विचार करें--आशा अथवा लालसा की दृष्टि से नहीं परन्तु तर्क की दृष्टि से--तो आपको विदित होगा कि सब धर्मों का आधार शान्ति है जो क्लेश के निवारण से मिलती है। मनुष्य का मन सदा निर्भय स्थान ढूंढ़ता है जहां चित्त को विश्राम मिल सके चाहे वह कोई सिद्धान्त हो अथवा कोई देवता हो अथवा कोई तर्क हो जिसका आश्रय लेने पर मन को शान्ति मिले। जब आप निरन्तर सुख शान्ति और विश्राम चाहते हैं तो क्या होता है ? मन में भय का संचार होता है और भय के

कारण चित्त आश्रय ढूंढ़ता है। इस समय मुझे विस्तार से वर्णन करने का अवकाश नहीं है। विस्तार से मैं पीछे कहूँगा परन्तु इस चर्चा में मैं संक्षेप में अपने सिद्धान्त का वर्णन करूंगा और यदि आपकी रुचि हो तो आप इस विषय पर मनन करें और प्रश्नोत्तर के अवसर पर मैं आप लोगों की शंकाओं का समाधान करने का प्रयत्न करूंगा॥

इस प्रकार प्रचलित धर्मों के द्वारा उस मनुष्य के मन को आश्रय मिलता है जो सुख की लालसा में पड़ कर अनिष्ट की आशंका से भयभीत होकर विश्राम चाहता है और जहां विश्राम की इच्छा है वहां बोध कहां? संसार में जितने धर्म हैं वे कि चित्तको शान्ति प्रदान करने के निमित्त श्रद्धा के आधार पर अनेक युक्तियाँ बतलाते हैं परन्तु धर्म में श्रद्धा आवश्यक है। कृपा कर मेरे शब्दों का अर्थ आप लोग विपरीत न समझें और अयुक्त कथन का आश्रय न लें। श्रद्धा ही उन धर्मों का आधार है। संसारके झगड़ों चिन्ताओं पीड़ाओं और दुःखों से पीड़ित होकर आप लोग शान्ति चाहते हैं और श्रद्धा से चिन्ता दूर होकर चित्त को विश्राम मिलता है इस कारण आप धर्म पर श्रद्धा रखते हैं। इस श्रद्धा का आधार मूढ़ विश्वास है और इसी आधार पर प्रचलित धर्म और उनके सिद्धान्त प्रतिष्ठत हैं॥

मेरी दृष्टि में--कृपा कर आप लोग मेरे शब्दों पर विचार करें क्योंकि मैं विश्वास नहीं चाहता—जितने विश्वास हैं और युक्तियां है वे सब बन्धन हैं क्योंकि वे तत्व की जिज्ञासा के बाधक हैं। आप लोग समझते हैं कि विश्वास सिद्धांत और श्रद्धा

संसार के झगड़ों से छूटने के लिये पथप्रदर्शक के समान हैं इस कारण संसारके उपद्रवका अनुभव करनेकी अपेक्षा इन तर्कों सिद्धांतों और धारणाओं के चिन्तन में आप लोगों की रुचि अधिक होती है। इस प्रपंच का तत्व समझने में विश्वास और धारणाओं से सहायता कोई नहीं मिलती। प्रपंच को समझने के लिये विशुद्ध मन से विचार करना चाहिये जिसमें दोष का लेशमात्र भी न हो। परन्तु यदि आप शान्ति और विश्राम चाहते हैं तो ऐसा सिद्धान्त अवश्य होना चाहिये जिसकी शरण में चित्त को आश्रय मिले इस कारण हम लोग ईश्वर और सत्य की कल्पना करने लगते हैं॥

अब मेरी दृष्टि में एक परम सत्ता विद्यमान है। वह सत्ता अनादि विश्वरूप आधारभूत सत्य और अविनाशी है परन्तु अचिन्त्य है, उसे किसी का विश्वास अपेक्षित नहीं परन्तु उसका ज्ञान उस मनुष्य को हो सकता है जिसकी बुद्धि निर्मल हो और खूंटे से बंधे हुए पशु के समान किसी सिद्धान्त पर आरूढ़ होकर स्थिर न हो गई हो। मैं कहता हूँ कि एक परम सत्ता विद्यमान है चाहे उसे ईश्वर कहें सत्य कहें अथवा अन्य किसी नाम से अभि-हित करें परन्तु उसके बोध के लिये बुद्धि अत्यन्त निर्मल होना चाहिए। इस कारण किसी सिद्धान्त को मानने से काम नहीं चलेगा परन्तु मन में सच्चे और झूठे जो भाव भरे हैं उनका विवेचन होना चाहिये। अब आप लोग देखेंगे कि प्रायः धर्म के सभी जिज्ञासु सत्य की खोज में लगे हैं और इसी उद्देश्य से सिद्ध होता है कि आप लोग संसार के प्रपंच से छूटना चाहते हैं

अथवा अपनी वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट हैं। इस कारण आप लोग सत्य की खोज में लगे हैं और संसार के प्रपंच से छूट कर ईश्वर और सत्य का बोध प्राप्त करना चाहते हैं। इस कारण यह खोज मिथ्या है क्योंकि आप लोग प्रपंच से भागना चाहते हैं और शान्ति और विश्राम चाहते हैं। प्रचलित धर्मों का आधार जो विश्राम की धारणा है वही धोखे की टट्टी है इस कारण मेरी दृष्टि में सब धर्म धोखे की ही टट्टियां हैं। जिनको हम लोग प्रपंच से छुड़ाने वाले और सत्य का मार्ग दिखाने वाले आचार्य समझते हैं वे ही गुरु सन्यासी और महात्मा लोग हमें जाल में फंसाते हैं क्योंकि संसार के व्यवहार के अनुभव के बिना हमें तत्व का ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता और निज अनुभव ही इस बोध का साधन है और इसका मार्ग कोई व्यक्ति नहीं दिखला सकता।

यदि गुरु और शिष्य दोनों को सत्य का बोध हो तो दोनों को सत्य का अनुभव हो सकता है परन्तु शिष्य को सत्य का ज्ञान ही नहीं होता इस कारण सत्य की जिज्ञासा प्रपंच में ही हो सकती है प्रपंच को छोड़ कर नहीं और यदि कोई विद्वान ईश्वर अथवा सत्य की व्याख्या करने का साहस करता है तो वह मिथ्या है क्योंकि यह विषय मन और वाणी के अगोचर हैं। शब्दों के जाल में अवाच्य नहीं फंसता न वाणी के द्वारा इसका निर्देश होता है। जब निज अनुभव के आधार पर इस प्रपंच के कारण का अनुसंधान करोगे तो इस प्रपंच की असत्ता प्रगट होगी और तुम्हें सत्य का अनुभव होगा। इस अनुभव से सुख और बोध प्राप्त होंगे परन्तु भय के कारण महात्माओं के उपदेश से संगृहीत

मिथ्या सिद्धान्तों के आधार पर प्रतिष्ठित ज्ञान के द्वारा सत्य का बोध कदापि नहीं हो सकता। मैं कहता हूँ कि अनन्त परम सत्ता विद्यमान है परन्तु उसका अनुभव किसी यंत्र के द्वारा नहीं हो सकता और प्रचलित धर्म यंत्र के ही तुल्य हैं। इसके अतिरिक्त प्रचलित धर्मों ने संसार के मनुष्यों को अनेक वर्गों में विभक्त कर दिया है। इस प्रकार मतवाद के झगड़े में पड़ कर ईसाई और हिन्दू भिन्न वर्गों में बंट गये हैं। परन्तु आप लोग कहेंगे कि यदि सब हिन्दू ईसाई हो जावें तो एकता स्थापित हो जावेगी इसी प्रकार हिन्दू लोग यह कहते हैं यदि सब धर्मों के अनुयायी हिन्दू हो जावें तो भेद मिट जावेगा। फिर भी भेद नष्ट न होगा क्योंकि मतभेद बना ही रहेगा और मतभेद से विभाग होगा और विभाग से झगड़े उत्पन्न होंगे।

लोग कहते हैं कि धर्म से एकता होती है, परन्तु विचार करके देखिये कि संसार में इन मतों के कारण कितने झगड़े खड़े हो गए हैं प्रत्येक मत के अनुयायी अपने मत वालों की संख्या सम्पत्ति अधिकार और स्मृतियों के बढ़ाने के लिए कितना उपद्रव मचा रहे हैं क्योंकि वे अपने मत को ही सत्य मानते हैं। सत्य अद्वितीय है परन्तु उसका ज्ञान किसी मत अथवा धर्म के द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता। धर्म में कितना सत्य और कितना असत्य है इसका निर्णय किसी यंत्र के द्वारा नहीं हो सकता न प्रचलित बातों को मानने से काम चलता है। यदि आप प्रचलित मत से सन्तुष्ट हैं तो आप उसे मानेंगे परन्तु यदि आप सन्तुष्ट हैं तो मेरी बात नहीं सुनेंगे और

मेरा कहना व्यर्थ होगा। यदि आप सन्तुष्ट नहीं हैं तो मैं आप को विचार करने की युक्ति बताऊंगा और विचार के द्वारा आप सत्य को जान जावेंगे सत्य के ज्ञान से आप का जीवन सुख और शान्ति से पूर्ण होगा परन्तु अपनी रक्षा के लिए सब से झगड़ा करके नहीं और उसी को आप लोग अपना धर्म समझते हैं॥

संसार के प्रपंच से बचने के लिये आप समाज का आश्रय ढूंढ़ते है। परन्तु समाज तो अनेक व्यक्तियों का समूह मात्र है। समाज कोई गूढ़ वस्तु नहीं। जैसे आप हैं तैसा आप का समाज है। वह दबाता है रोकता है आज्ञा देता है और ऐंठता है। समाज व्यक्तिगत भावों का विकास मात्र है। समाज आश्रय देता है अपनी रीतियों के द्वारा जिन्हें लोकमत कहते हैं। लोकमत के अनुसार परिग्रह, जोड़ना न्याय है क्योंकि जिसके पास सम्पत्ति है उसी का मान है वही बड़ा आदमी है। यह बात सर्वत्र मान्य है आप लोगों को धन की इच्छा है इस कारण समाज में धन का मान है आप लोग महत्व चाहते हैं और सम्पत्ति से महत्व मिलता है इस कारण धन का संचय करना धर्म है। इसीको लोग सदाचार कहते हैं क्योंकि लोकमत के अनुकूल चलना सदाचार है! मैं इसका विरोध नहीं कर रहा हूँ। मैं इसको मिथ्या सिद्ध करना चाहता हूँ यदि आप इसकी सत्यता जानना चाहते हैं तो अनुसंधान करें परंतु विरोध न करें। इसका अर्थ यह है कि आप लोग स्त्री पुत्र और धन का संग्रह उचित समझते हैं। अब यदि कोइ दूसरा समाज ऐसा खड़ा हो

जावे जो परिग्रह को बुरा और धन जोड़ना अनुचित समझने लगे जैसे आप वर्त्तमान स्थिति, दशा, शिक्षा और लोकमत के आधार पर उचित समझते हैं तो फिर सदाचार का मूल्य जाता रहा सदाचार केवल व्यवहार की सुलभता रह गई। विवेक नहीं व्यवहार का कौशल ही सदाचार कहलाता है। यदि आप लोग परिग्रह को त्याज्य समझें तो समाज का विरोध करना पड़ेगा क्योंकि समाज का आधार सम्पत्ति है। यदि आप इस बात को समझते हैं और अनीतियुक्त समाज के बंधन में नहीं रहना चाहते तो आप अपनी इच्छा से इस बंधन को तोड़ कर स्वतंत्र हो सकते हैं आपको परिग्रह छोड़ कर सन्यास के बंधन में पड़ने की आवश्यकता नहीं ॥

अभी आप चाहें अथवा न चाहें उचित समझें अथवा अनुचित समझें परन्तु आप अपने ही मन से कल्पित बंधनों में पड़े हैं क्योंकि आप लोग धन की महिमा को मानते हैं और सम्भव है कि दूसरा समाज खड़ा हो जावे जो धन का संग्रह निंदनीय समझे। परन्तु समाज के दबाव से परिग्रह जोड़ना अथवा छोड़ना नीति नहीं है। सच्ची नीति वही है जिसके द्वारा आप धन की असारता को समझें और विवश होकर न धन छोड़ें न जोड़ें ॥

अब देखिये समाज का आधार जाति भाव है क्योंकि जाति भाव से मन को सहारा मिलता है। जैसे धर्म का आधार विश्वास है वैसे ही जाति का आधार सम्पति है। जैसे विश्वास भिन्न होने से मनुष्यों में भेद पड़ता है उसी प्रकार सम्पत्ति के भेद से जाति

अलग होती है। यही जातिभेद देशभक्ति के नाम से युद्ध का कारण होता है क्योंकि जातिभेद का आधार उद्योग के द्वारा दुर्बलों की सम्पत्ति छीनने का प्रयत्न ही है। सब जातियां और बड़े राष्ट्र युद्ध की तैयारी में लगे हैं क्योंकि यह उनका धर्म है इस कारण देशभक्ति का बीड़ा उठाना और शान्ति का प्रचार करना असंगत है।यदि आप लोग मानवजाति की एकता को मानते हैं तो ईसाई जाति अथवा हिन्दू जाति का नाम लेना व्यर्थ है क्योंकि जातिभेद से द्रोह उत्पन्न होता है ॥

इस प्रकार जातिभेद युद्ध का हेतु है। जब मैं भारतवर्ष में व्याख्यान दे रहा था तो लोगों ने मुझसे कहा (अब हिन्दुओं में भी जातीयता का रोग घुस गया है) पहिले हम अपने देश की दशा सुधारें क्योंकि इतने प्राणी भूखों मर रहे हैं फिर संसार की चिन्ता करें। आप लोग भी यहां यही बात कहते हैं कि पहिले हम अपनी रक्षा करें फिर संसार की एकता की बातचीत करें। अब यदि भारतवर्ष में लोग भूखों मर रहे हैं अथवा इस देश में बेकार बहुत हैं तो आप न्यूज़ीलैंड की बेकारी की समस्या हल नहीं कर सकते। यह तो मानव जाति की समस्या है किसी एक देश की नहीं। लोग केवल भारतवर्ष अथवा चीन में ही भूखों नहीं मरते अथवा बेकारी केवल इंगलैण्ड जर्मनी अमेरिका अथवा आस्ट्रेलेशिया ही में नहीं यह समस्या विश्वव्यापी है और इसकी पूर्ति तभी हो सकती है जब आप लोग देशभक्ति छोड़ें और राष्ट्रीयता का त्याग करें। जब आप सोते से उठते हैं तो राष्ट्रीयता का ध्यान

नहीं रहता परन्तु जब आप समाचार पत्रा में पढ़ते हैं कि पड़ोसी पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है तब राष्ट्रीयता का ध्यान आता है। इस कारण हम लोग असभ्य हैं परन्तु आप लोगों के देश पर आक्रमण करने वाला नहीं। देश भक्त असभ्य है क्योंकि वह मानव जाति की अपेक्षा अपने देश की भलाई का अधिक ध्यान रखता है। परन्तु मैं कहता हूँ कि जब तक आप लोगों को केवल अपने देश की भलाई का ध्यान रहेगा तब तक आप लोग आर्थिक और राष्ट्रीय प्रश्नों का निर्णय नहीं कर सकते। इन प्रश्नों का निर्णय तभी हो सकता है जब आप लोग राष्ट्रीय संकीर्णता छोड़ कर उदार चित्त हो जावें जब आप लोगों को अपनी सम्पत्ति का ध्यान न रहे और आपका चित्त विविधमतों के झगड़े में न पड़े। तभी मानव जाति कीएकता सिद्ध हो सकती है और तभी दरिद्रता बेकारी तथा युद्ध के प्रश्न हल होंगे क्योंकि आप लोग संपूर्ण मानव जाति के हित की चिन्ता में रत हो जावेंगे और अपने को अन्य जातियों से भिन्न समझ कर उनकी सम्पत्ति छीनने की चेष्टा न करेंगे॥

अब आपने देख लिया कि मनुष्य जाति के अनेक विभाग कैसे हुये और जीवन का सच्चा ऐश्वर्य कैसे नष्ट हुआ जिसके विकास से ही जीवन के सत्य अमृतत्व और आनन्द का अनुभव हो सकता है। परन्तु यह अनुभव तभी प्राप्त हो सकता है जब आप लोग अपने शुद्ध रूप में स्थित हो जावें। इसका अर्थ यह है कि आप लोग यह समझने लगें और उसी के अनुसार

व्यवहार करने लगें कि प्रचलित व्यवहार की रीतियों में क्या बुराइयां फैल गईं हैं तब आप लोगों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का लाभ होगा । आप लाग समाज का संशोधन नहीं कर सकते। परन्तु समाज क्या है ? केवल अनेक व्यक्तियों का समूह है। हम लोग समाज की कुरीतियों के दूर होने की बाट देख रहे हैं और आशा करते हैं कि किसी दिन दैवयोग से हमारे समाज की कुरीतियां निकल जावेंगीं क्योंकि न हम लोग विचार करना चाहते हैं न उद्यम करना चाहते हैं। जब तक हम लोग दैव भरोसे बैठे रहेंगे तब तक झगड़े और कष्ट बढ़ेंगे और तत्व का ज्ञान दुर्लभ होता जावेगा और जीवन दुःखमय और निःसार हो जावेगा। परन्तु यदि आप लोग दैव का आश्रय छोड़ कर पुरुषार्थ में प्रवत्त होंगे और बुद्धि के द्वारा तत्व को समझने और खोजने का प्रयत्न करेंगे तब आपका उद्योग सफल होगा। तब आपको समाज के सुधार की चिन्ता न रहेगी प्रत्युत मन की दशा में पूर्ण परिवर्तन हो जावेगा । फिर सम्पत्ति तथा अधिकारों की रक्षा की भी चिंता न रहेगी परन्तु चित्तमें विश्वव्यापी प्रेम उत्पन्न होगा और शुद्ध संकल्प होंगे इस प्रकार जीवन आनन्दमय हो जावेगा ॥

——:o:——

वसन्तशाला के उद्यान में पहिला व्याख्यान
मार्च ३०, १९३४

मित्रगण !

आज प्रातःकाल के इस हृदयग्राही अवसर पर जिन दूषित और पैशाचिक रीतियों का समर्थन हम लोग प्रति दिन करते हैं और जो नाना प्रकार के अत्याचार हम लोगों की जान में अथवा अजान में हो रहे हैं उनका वर्णन करते हुये मुझे बड़ा दुख होता है। इन बुराइयां को देख कर भी न हमें विस्मय होता है न हम उनका प्रतिवाद करते हैं हम लोग केवल घृणित और दुःखमय जीवन व्यतीत करते हैं और प्रत्येक मनुष्य पर नित्य जो विपत्तियां आकर पड़तीं हैं उन्हें किसी प्रकार झेलते जाते हैं ॥

अब यदि आप लोग वर्त्तमान स्थिति पर विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि यद्यपि हम संसार में देख रहे हैं कि एक मनुष्य दूसरे को सता रहा है कोई निर्बलों को कष्ट पहुंचा रहा है कोई दूसरों को ठगने का प्रयत्न कर रहा है तथापि हम लोग अपने स्वार्थ के साधन की चिन्ता में ही तत्पर हैं। या तो आप लोग इन बुराइयों को देख कर भी शान्त हैं अथवा इस स्थिति को बदलने की चेष्टा कर रहे हैं। कभी २ जब इन कुरीतियों स आप का संसर्ग पड़ जाता है तो इन दोषों का निवारण करके सदाचार के साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करने की उत्कट इच्छा मन में उत्पन्न होती है परन्तु संकट टल जाने पर फिर वही प्रमाद आ घेरता है। इस कारण यदि आप लोग संसार को वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट हैं तो मुझे कुछ

कहने की आवश्यकता ही नहीं। लौकिक व्यवहार में जो अन्याय अत्याचार और धूर्त्तता चल रही है उन उपद्रवों को देख कर यदि आप का चित्त खिन्न नहीं होता और आप के चित्त की शान्ति भंग नहीं होती तो मेरा कहना सब व्यर्थ है। परन्तु यदि आप लोग व्यवहार की प्रचलित प्रथा में परिवर्तन करना चाहते हैं और यदि आप समझते हैं कि मानव समाज की दशा कुछ अच्छी होना चाहिये केवल कतिपय महात्माओं की ही नहीं प्राणिमात्र की दशा की उन्नति होना चाहिये तो आइये हम सब लोग मिल कर इस विषय पर विचार करें। मैं कोई नवीन सिद्धान्त आप लोगों के सन्मुख उपस्थित नहीं करना चाहता न मैं व्यवहार की गति को किसी अन्य दिशा में ले जाना चाहता हूं अथवा आप लोगों को किसी नये काम में लगाना चाहता हूं परन्तु मैं यह चाहता हूं कि हम सब लोग मिल कर कोई ऐसी युक्ति सोचें जो जीवों की स्वाभाविक रुचि के अनुकूल हो। जिस से लोग विवश होकर उस के अनुसार कार्य करने लगें। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिये दो मार्ग खुले हुए हैं एक तो समाज का परिष्कार करके व्यवहार का संशोधन करें अथवा सत्य का प्रचार करके समस्त बुराइयों की जड़ ही काढ दें।

संशोधन से मेरा अर्थ यह है कि व्यवहार की दृष्टि में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया जावे परन्तु उसका आधार वैसा ही बना रहे। संशोधन इसी को कहते हैं कि व्यवहार की शैली वैसी ही बनी रहे। परन्तु कुछ गौण कठिनाइयां दूर कर दी जावें और कुछ

अनुचित प्रथायें बन्द कर दी जावें परन्तु मूल व्यवहार में परिवर्तन न हो। ऐसा काम संशोधन कहलाता है जैसे शहर के कंगालों के घरों में कुछ सुधार कर दिये जावें। नगर के कंगालों की दशा सुधारना बुरा नहीं परन्तु दरिद्रता का रहना ही बुरा है। प्रश्न यह है कि निर्धनता अत्याचार और जाति भेद कैसे बन्द किया जावे यह नहीं कि इन बुराइयों में कैसे कमी की जावे। जब तक हम लोग इस प्रश्न के महत्व को न समझें और व्यवहार में समूल परिवर्तन न करें तो केवल प्रगट लक्षणों के निवारण से कुछ फल न होगा।

इस कारण मैं आज यह सिद्ध करना चाहता हूं कि जब तक हम लोगों में स्वार्थ बुद्धि बनी है हम लोग अपनी ही उन्नति अथवा अपने ही वैभव की चिन्ता में रत हैं तब तक बुद्धि की संकीर्णता के कारण ये प्रश्न सदा बने रहेंगे। लौकिक व्यवहार में आप चाहे जितने सुधार करें जब तक इस व्यवहार का आधार स्वार्थ बुद्धि है तब तक इन दोषों का संवरण ही होगा ये निर्मूल नहीं किये जा सकते। मान लीजिये कि आप लोग संपत्ति के अधिकारों के नियमों में परिवर्तन करना चाहते हैं तो आप यह चाहेंगे कि आप के भूमि खंड पर आपका अधिकार सुरक्षित रहे और दूसरों को अन्य भूमि खंडों पर अधिकार दे दिए जावें। आप अपनी संपत्ति की रक्षा करना चाहते हैं और दूसरों के अधिकार भी सुरक्षित रखना चाहते हैं। परन्तु मेरी धारणा है कि आपकी संपत्ति की ममता ही पड़ोसी से झगड़ा करावेगी और राष्ट्र जाति अथवा

कुल के भेद उत्पन्न कर देगी और यदि आप ऐसे नियम बनाना चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति इतनी संपत्ति रख सके इस से अधिक न रखे तो आप केवल उपद्रव को शान्त करना चाहते हैं निर्मूल नहीं करना चाहते, यह उपाय उस वैद्य की चिकित्सा के समान है जो केवल रोग के वेग को दबा देता है जड़ नहीं काटता ।

अब मैं दूसरा उदाहरण लेता हूं । लक्षणों के विमर्श का अर्थ यह है कि आप अपने धर्म में बने रहें और मैं अपने धर्म में बना रहूं कोई किसी का विरोध न करे । परन्तु जैसा मैं पहिले कह चुका हूं मैं धर्म की जड़ विशेष मतों अथवा भावनाओं पर विश्वास को ही मानता हूं । आप कहते हैं कि हम धर्मात्मा हैं ईसाई हैं क्योंकि आप कतिपय सिद्धान्तों देवताओं और विधानों को मानते हैं और आप ने अपने मन में यह धारणा बना रखी है कि यदि सब लोग आप के धर्म को मानने लगें तो संसार का उद्धार हो जावे अथवा सब लोग आप के सिद्धान्तों को स्वीकार करने लगें । इस प्रकार हम लोग धर्मों में संशोधन करना चाहते है । परन्तु मेरी दृष्टि में सच्चा परिष्कार सच्चा संशोधन तथा सच्चा परिवर्तन तभी हो सकता है जब हम लोग प्रचलित मतों में संशोधन न कर के सम्प्रदायों को ही असत्य समझें । जब तक आप लोग मत मतान्तरों को मानते हैं तब तक भेद नहीं मिट सकते जब तक आप अपने संकल्पों में बद्ध हैं तब तक मुझ से अलग रहेंगे क्योंकि भेद का नाश न होगा और परस्पर प्रेम न होगा

क्योंकि जब तक हम लोग दोषदर्शी बने रहते हैं तब तक सच्चा वोध नहीं होता ॥

जब तक आप लोग केवल संशोधन करना चाहते हैं यानी शिक्षा सभ्यता और अधिकारों के नियमों में परिवर्तन करना चाहते हैं तब तक यद्यपि आप लोग कुछ समय के लिये लोगों के कष्ट निवारण कर शान्ति स्थापित करदें और जो असंख्य प्रश्न खड़े होते जावें उनका निर्णय करते रहें तथापि आप लोग मूल प्रश्न को टालते रहेंगे। वह यह है कि हमारी समाज अथवा सभ्यता लोभ ममता और छल के आधार पर कब तक प्रतिष्ठित रहेगी। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने मन में यह सोच ले कि मुझे क्या करना है इस सभ्यता अथवा समाज का अंग बने रहना है जो ममता और उस से उत्पन्न दोषों के आधार पर प्रतिष्ठित है अथवा आप लोगों ने यह समझ लिया है कि जब तक वर्तमान प्रणाली स्थित रहेगी तब तक युद्ध दुराचार और धूर्तता का लोप नहीं हो सकता इस कारण प्रत्येक व्यक्ति इस अनीति का समूल नाश कर के व्यवहार शुद्ध करने पर कटिबद्ध है केवल शाखायें काटने के लिये नहीं। यह प्रश्न यह समस्या प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित है कि हम केवल बुराइयों को दबाने का प्रयत्न करें अथवा पूर्ण परिवर्तन करें जहां ममता और भेदभाव का नाम भी न हो जब ऐसी भावना निरन्तर बनी रहेगी तो क्रमशः एक नया समाज नूतन राज्य अथवा नवीन भाव खड़ा होगा जिसमें धूर्तता को कोई स्थान न मिलेगा और प्राणयात्रा के लिये कोई विशेष

कष्ट न होगा। परन्तु इस प्रश्न का निर्णय तभी होगा जब आप लोग कष्ट का अनुभव करेंगे और उसके निवारण का उपाय सोचेंगे केवल उदासीन भाव से निरीक्षण करके अथवा सभा में विवाद करके ही निश्चिन्त होकर न बैठ जावेंगे। अब आप लोग पहिले बुद्धि द्वारा और फिर कार्य द्वारा निश्चय कर लें कि आप लोग अपनी बुद्धि के द्वारा समाज का उद्धार करेंगे अथवा ये झगड़े यों ही रहने देंगे ॥

अब मुझे कुछ प्रश्न मिले हैं जिनका मैं उत्तर दूंगा यही क्रम मैं नित्य पालन करता रहूंगा। ॥

प्रश्न–मेरे कुछ मित्रों का कहना है कि यद्यपि आपका व्याख्यान बड़ा मनोहर होता है तथापि हम लोगों को सत्य की जिज्ञासा की अपेक्षा सेवा करना अधिक प्रिय है इस विषय में आप क्या कहते हैं ?

उत्तर–आप लोग सेवा किसे कहते हैं ? प्रत्येक मनुष्य दूसरे की सहायता करना चाहता है। जो लोग लोक सेवा अपना कर्तव्य समझ रहे हैं उनका यही कहना है। वे लोग सदा लोक सेवा की ही चर्चा किया करते हैं विशेष कर वे लोग जो किसी विशेष मत के अनुयायी हैं। यह उन लोगों के चित्त का विकार है क्यों कि वे लोग समझते हैं कि हम चाहे जो कुछ करें लोक सेवा से जनता की भलाई होती है। यह कौन कहे कि सेवा का यथार्थ रूप क्या है ? जो मनुष्य सेना में भरती है और जो विदेशी उसके देश में घुसना चाहें उन्हें असभ्य कह कर उनका बध करने

को प्रस्तुत है वह भी यही कहता है कि मैं देश की सेवा कर रहा हूं। जो कसाई प्राणियों का बध करता है वह भी यही कहता है कि मैं समाज की सेवा कर रहा हूं। जो व्यापारी कच्चे माल का ठेका ले लेता है वह भी यही कहता है कि मैं जाति की सेवा कर रहा हूं। जो पुजारी लोगों की श्रद्धा से लाभ उठा रहे हैं उनका भी यही कथन है कि हम देश और जाति की सेवा कर रहे हैं। इसको निर्णय कौन करे ?

अब दूसरी बात सोचिए। क्या आप समझते हैं कि गुलाब का फूल कभी सोचता है कि मैं मनुष्य जाति की सेवा कर रहा हूं अथवा अपने सौन्दर्य से संसार का उपकार कर रहा हूं। उसका सच्चा उपकार यही है कि अपनी सुन्दरता का अभिमान उसे नहीं है इस कारण मनुष्यों के समान वह लोक सेवा का ढोल नहीं पीटता। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक मनुष्य संसार के उपकार के लिए नहीं निज स्वार्थःकी सिद्धि केलिए ही परोपकार का स्वांग भरता है और अपने सिद्धान्त प्रगट करता है। यदि आप मेरा सच्चा आशय जानना चाहते हैं तो यह मेरा मत प्रचारार्थ नहीं है। मैं इस प्रकार संसार का उपकार नहीं करना चाहता। मैं उपकार नहीं करता मेरा काम स्वभाव से ही चलता है। यही मेरी सेवा है। मेरी यह इच्छा कदापि नहीं कि और लोग मेरी बात पर श्रद्धा करें अथवा मेरे सिद्धान्तों को माने क्योंकि मेरा मत यह है कि सभी प्रकार की धारणायें जीव के लिए बन्धन हैं॥

सेवा करने के लिए अभिमान का पूर्ण रूप से परित्याग करना पड़ेगा क्योंकि जब तक चित्त में अभिमान है तब तक संसार की सेवा नहीं हो सकती। जब तक आप लोग विचार न करें यह बात समझ में नहीं आ सकती कि आप संसार का सच्चा उपकार कर रहे हैं। इस कारण संसार के उद्धार की चर्चा छोड़ कर पहिले हमें यह सोचना चाहिए कि हम में विचार और अनुभव करने की कितनी शक्ति है। विचार करने के लिए मन किसी शृंखला में बद्ध नहीं होना चाहिए। यह तो सीधी बात है कि गम्भीर सत्य और पूर्ण विचार करने के लिए मन पक्षपात विश्वास भय और प्राचीन संस्कारों से मुक्त होना चाहिए, । यदि सोचना है तो मन को नवीन युक्ति खोजना चाहिये प्रचलित सिद्धान्तों के आधार पर मनन नहीं हो सकता। प्राचीन शैली से तभी तक लाभ है जब तक उस से अनुशीलन में सहायता मिलती है और मन प्राचीन सिद्धान्तों में जकड़ नहीं जाता॥

अब मैं दूसरे ढंग से कहता हूं। हम सब लोग उपकार करना चाहते हैं। जब आप लोग किसी को दुःखी देखते हैं तो उसकी सहायता करना चाहते हैं परन्तु सच्ची सहायता के लिये उसके कष्ट का मूल कारण जानना चाहिए, यदि आप क्लेश का कारण जानना चाहते हैं तो गम्भीर विचार करना पड़ेगा और ऐसे विचार से केवल मन बहलाव ही नहीं होता परन्तु कार्य सिद्ध होता है।

प्रश्न–यह कहा जाता है कि आप के उपदेश का महत्व संसार में एक या दो व्यक्ति ही समझ सकते हैं। इस कारण संसार के उद्धार के लिए आधुनिक ब्रह्म विद्या के गौण सिद्धान्त आवश्यक हैं। इस विषय में आप क्या कहते हैं?

उत्तर–पहिले आप लोग यह तो जान लें कि मुझे क्या कहना है फिर यह कहें कि यह असम्भव है। मैं यह कहता हूं कि हमारे विचार कर्म और व्यवहार इसी सिद्धान्त के आधार पर प्रतिष्ठित हैं कि दूसरों की हानि से हमारा लाभ होगा यह बात सच है या नहीं? और जब तक यह सिद्धान्त संसार में प्रचलित रहेगा तब तक संसार में दुःख बने रहेंगे दुराचार रहेगा और जाति भेद रहेंगे। कोई धर्म जगत में शान्ति स्थापित नहीं कर सकता क्योंकि सब धर्मों का मूल मानवी वासनायें हैं इस कारण धर्म दुराचार का हेतु बन जाता है। जिस चेतन सत्ता का मैंने अनुभव किया है जिसे आप ईश्वर सत्य अथवा किसी नाम से विभूषित करें और जो बुद्धि की पराकाष्ठा है उसका बोध तभी हो सकता है जब आप उन बन्धनों से मुक्त हो जावें जो आपने त्राण और अनामय की लालसा से रच लिये हैं जैसे धर्म और सम्पत्ति।

मेरे कथन का आशय समझना कठिन नहीं है परन्तु उसे व्यवहार में लाना कठिन है। व्यवहार में लाने के लिये साहस की आवश्यकता नहीं बुद्धि चाहिये। हम लोग संसार का व्यवहार शुद्ध होने की बाट देख रहे हैं अपनी शुद्धि नहीं करना चाहते।

हम लोग सम्पत्ति के अधिकारों के नियमों के परिवर्तन की राह देख रहे हैं परन्तु हम अपने अधिकार नहीं छोड़ना चाहते। अधिकारों से मुक्त होने के लिये हमें यह सोचना चाहिये कि हमें किस वस्तु की आवश्यकता है ? जब आप अपनी आवश्यकताओं को जान गये तो परिग्रह के बंधन से मुक्त हो गये। यदि मनुष्य विचार करे तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को सरलता से समझ सकता है। परन्तु जब तक वह अपने स्वत्व की रक्षा लोभ और धन कमाने में लगा है तब तक वह अपनी आवश्यकताओं को नहीं समझ सकता जब आपको अपनी आवश्यकतायें विदित हो जावें तो आपको लौकिक व्यवहार के साथ अपनी कामनाओं का सम्बन्ध जोड़ने की कोई आवश्यकता न रहेगी। मैं समझता हूँ यह स्पष्ट है।

मेरा आशय यह है कि जब तक मन में भ्रम का संचार बना है तब तक शुद्ध व्यवहार और जीवन के पूर्ण विकास के आनन्द का अनुभव करना असम्भव है। इस भय से बचने के लिये हमने अनेक धर्म मत अधिकार और स्वत्व के नियम रच लिये हैं। इस कारण हम लोगोंको निरन्तर कष्ट दे रहे हैं झगड़े बढ़ा रहे हैं और अशान्ति स्थापित कर रहे हैं। यदि आप सोचें तो बात सीधी है।

यदि आप लोग मेरे कथन का तात्पर्य समझना ही चाहते हैं तो एक दृष्टान्त मैं आप लोगों के समक्ष रखता हूँ उस पर विचार करें और उसे व्यवहार में लावें तब आप समझ जावेंगे कि वह साध्य है अनिश्चित अव्यवहार्य और अचिन्त्य नहीं। फिर आप लोगों को अन्य उपदेश की आवश्यकता न रहेगी॥

आप लोग जानते हैं कि लोग तत्व को समझते ही नहीं इस कारण उन्हें ऐसी शिक्षा दी जावे जो उनकी समझ में आ जावे यही सिद्धान्त धर्म के नाम पर लोगों को ठगने का मूल है। धनी लोगों का यही सिद्धान्त है। सम्पन्न लोगों की यही धारणा है। वे और लोगों का पेट भरना चाहते हैं उन्हें व्यवहार सिखाना चाहते हैं और उन्हें मार्ग दिखाना चाहते हैं परन्तु मैं दूसरों को जगाना चाहता हूँ जिससे वह अपना मार्ग स्वयं ढूंढ़ ले। परन्तु यदि मैं उसे अपनी सामर्थ्य अपनी बुद्धि अपने कर्त्तव्य अपने व्यवहार का बोध करा दूं तो जाति भेद नष्ट हो जावेगा। क्योंकि मैं उसे बालक के समान धूर्तों के जाल में फ़ँसने के योग्य अशिक्षित नहीं रखना चाहता। सब धर्मों का यही मत है कि तत्व का जानना अत्यन्त दुष्कर है वह किसी विरले की ही समझ में आता है इस कारण मैं तुम्हें उपदेश करूंगा मेरे जाल में आकर फँसो। प्रचलित धर्मों का यही व्यवहार है। जाल रचने की यह युक्ति अच्छी है इससे लोग वशवर्ती बने रहेंगे। धनी लोग भी ऐसी ही युक्ति वर्तते हैं कोई धर्म की शरण लेता है कोई लौकिक व्यवहार की परन्तु विचार कीजिये लोगों को ठगने के दोनों उत्तम व्यवसाय हैं॥

(सुनो! सुनो!) महाशयगण! कृपा कर आप लोग सुनो सुनो कहने का कष्ट न उठावें। इस समय कार्य करने की बड़ी आवश्यकता है मुझसे सहमत होने की नहीं क्योंकि इससे कुछ लाभ नहीं। क्रिया में प्रवृत्ति ही सम्मति का सच्चा लक्षण है। इस का अर्थ यह है कि जब आप लोग कहते हैं सुनो! सुनो! तो आप

लोगों को समाज मित्र परिवार तथा चिरकाल से प्रचलित व्यवहार का विरोध करना पड़ेगा। इसके लिये साहस नहीं बोध की बड़ी आवश्यकता है जिसके द्वारा व्यवहार के सत्य और असत्य का निर्णय हो सके ॥

मेरी दृष्टि में सांसारिक जीवन शिक्षागृह नहीं है। जीवन शिक्षा प्राप्त करने के लिये नहीं आत्मा के गुणों के विकास के लिये है। यदि आप निरन्तर युद्ध संघर्ष तथा उद्योग में लगे रहें तो जीवन का रूप अत्यन्त भीषण हो जावेगा। व्यक्तिगत उन्नति विकास और वैभव की लालसा से वर्तमान काल में मानवी जीवन में विकराल संघर्ष उत्पन्न होगया है ॥

यही मैं कहना चाहता हूं। इसको समझना अत्यन्त सरल है। एक प्रकार से यह सरल है। इसका पूर्ण आशय एकबारगी समझ में नहीं आता। इससे केवल इतना बोध होता है कि किस दिशा में हमें जाना है। स्वभाव बदलने में बड़ा कष्ट होता है सुख नहीं मिलता परन्तु कष्ट से ज्ञान प्राप्त होता है। ईश्वर जानता है हम लोग नित्य ही झगड़ों में फँसे रहते हैं और उनसे बचने का प्रयत्न करते रहते हैं। इस कारण इन झगड़ों से बचने का अभ्यास होगया है ॥

प्रश्न–क्या आप विस्तार से यह समझाने की कृपा करेंगे कि आपने जो कहा कि तुम्हारे गुरु ही शत्रु हैं इस का अर्थ क्या है? यदि गुरु सच्चा हो तो शत्रु कैसे हो सकता है ?

उत्तर–आपको गुरु की क्या आवश्यकता है ? आपको धर्म

में दृढ़ वनाने के लिए ? अथवा ज्ञान का उपदेश करने के लिये अथवा देवताओं से मिलाने के लिए ? अथवा विवाह मृत्यु अथवा किसी पर्व के अवसर पर पूजा पाठ संस्कार करने के लिए। जब हम यह विचारें कि गुरुओं की हमें क्या आवश्यकता है तब हमें पता लगेगा कि गुरु हमारे शत्रु हैं ॥

यदि आप कहें कि हमारी निष्ठा धर्म में दृढ़ करने के लिये हमें गुरु की आवश्यकता है तो आप धर्म निष्ठ नहीं गुरु आपकी निष्ठा धर्म में चाहे जितनी दृढ़ कर देवें क्योंकि निष्ठा स्वाभाविक होती है प्रेरणा वश नहीं। धर्म में रुचि भय के कारण अथवा किसी विशेष दशा में नहीं होती। सच्चे धर्म का आधार स्वतन्त्र बुद्धि है जो कार्य में परिणत हो जाती है। इस कारण आप को धर्म में आरूढ़ करने के लिये मेरे मत से गुरु की आवश्यकता नहीं। यदि आप यह कहें कि सत्य का बोध कराने के लिए गुरु की आवश्यकता है तो आप को और गुरु को दोनों को तत्व का ज्ञान होना चाहिए। यदि आप कहीं जाना चाहें तो आप को यह विदित होना चाहिये कि आप कहां जाना चाहते हैं और पथ प्रदर्शक को भी यह जानना चाहिए कि वह कहां जा रहा है। यदि आप जानते हैं कि सत्य कहां मिलेगा तो भी आपको गुरु की आवश्यकता नहीं। यह युक्ति नहीं तत्व का कथन मात्र है ॥

अब हमने क्या किया ? हमने सत्य को अपनी वर्तमान दशा से विपरीत समझ रखा है। हम कहते हैं कि सत्य निर्विकार

है बोध स्वरूप है असीम है। क्योंकि हम में ये गुण नहीं हैं इस कारण हम सत्य को प्रपंच के विपरीत मानते हैं और उसके ज्ञान की प्राप्ति के लिये हम गुरु ढूंढ़ते हैं। इसका अर्थ क्या हुआ? इस प्रपंच से आपको छुड़ा कर उस अज्ञात पद पर पहुंचाने वाला चाहिये जिसे आप सत्य समझते हैं। इस कारण गुरु आप को प्रपंच के त्याग का उपदेश देते हैं॥

एक दिन मैं एक पुजारी से वार्त्तालाप कर रहा था। उसने मुझ से यह कहा कि मन्दिर का व्यवसाय मैं इस लिये चला रहा हूं कि आज कल बेकारी बहुत है। आप जानते हैं कि बेकारों के घर नहीं साज नहीं सुख नहीं गीत वाद्य नहीं प्रकाश नहीं शोभा नहीं जीवन ही निःसार है। यदि वे आठवें दिन भी मन्दिर में आवें तो यहां की शोभा शान्ति सुगन्धि उन्हें अनुभव करने को मिलेगी एक सप्ताह तो आनन्द से कटेगा फिर आवेंगे। क्या यह व्यवहार की कुशलता नहीं? क्या ये पुजारी लोगों को बेकारी की जड़ खोदने के बदले उनको बहलाने का प्रयत्न नहीं कर रहे थे।

अब आप यह कहें कि पूजा पाठ विधि के अनुसार करने के लिये पुजारी आवश्यक है तो मैं पूछता हूँ कि पूजा पाठ की ही क्या आवश्यकता है? मैं नहीं जानता क्योंकि मैं कभी मन्दिरों में नहीं जाता। मुझे कोई लाभ प्रतीत नहीं होता परन्तु आप लोग जो पूजा पाठ करते हैं मैं पूछता हूँ कि आपको इससे क्या लाभ हुआ? आप पर्व के दिन वहां जाते हैं आपके हृदय में भक्ति और उत्साह

का आवेश होता है और फिर सप्ताह भर आप लोग प्रपंच के व्यवहार में फंसे रहते हैं। यह तो बड़ा अनर्थ है। फिर पुजारी की क्या आवश्यकता रही ?

यदि आप कहें कि यह तो धन कमाने का ढंग है तो दूसरी बात है। यदि आप इसे व्यवसाय समझें जैसे वकील नौसेना योद्धा आदि के धंधे हैं उसी प्रकार यह भी व्यवसाय है तो दूसरी बात है क्योंकि उपरोहिती करना भी पुराना धंधा है॥

इस कारण यदि आप यह आशा करें कि पुजारी गुरू बन कर आप को सत्य का मार्ग दिखावेंगे तो यह आशा व्यर्थ है आप धोखा खावेंगे। मैं ईसाई पुजारी अथवा हिन्दी पुरोहितों के लिये नहीं कह रहा हूँ। मेरे लिये सब एक से हैं। मैं कहता हूँ कि जनता को इन से कोई लाभ नहीं। मैं यह नहीं कहता कि आप लोग मेरे कथन पर विश्वास करके इसे मान लें। स्वयं विचार करें क्योंकि यदि आपने मेरा कथन मान लिया तो आपने मुझे भी गुरू बना लिया फिर आप भ्रम में पड़ जावेंगे। यदि आप लोग भली भांति विचार करें तो आप समझ जावेंगे कि नाना मत और उनके आचार्य मानव जाति में विभाग उत्पन्न कर रहे हैं जिन के कारण भीषण युद्ध जाति वैमनस्य और राष्ट्रीय संघर्ष की संभावना इतनी बढ़ रही है कि प्रेम स्नेह और सद्विचारों का कहां नाम भी नहीं सुनाई पड़ता !

प्रश्न—क्या मृत्यु के पीछे जीव रहता है ?

उत्तर—क्या इस बात की तुम्हें सच्ची जिज्ञासा है ? होगी

अवश्य, नहीं तो यह प्रश्न ही न उठता। अब क्षण भर ठहरिये। आप क्यों जानना चाहते हैं कि मृत्यु के पीछे जीव रहता है कि नहीं, केवल मन को समझाने के लिये अथवा कौतूहल से अथवा आपको वर्त्तमान से भय है इस लिये आप भविष्य जानना चाहते हैं अथवा मनोरञ्जन के लिये। आप जानते हैं कि कुछ विद्वान प्रसिद्ध आधुनिक वैज्ञानिक यह कहने लगे हैं कि जीव का नाश नहीं होता। वे कहते हैं कि वैतालिकों के द्वारा आप स्वयं सिद्ध कर सकते हैं कि मृत्यु के पश्चात् जीव रहता है। मान लीजिये कि यह ठीक है। परन्तु इससे आपको क्या ? आपने जीव की भविष्य की स्थिति जानने के लिये क्या किया ? न आप अधिक सुखी हुए न बुद्धि बढ़ी न आपके चित्त में दया विचार अथवा प्रेम का संचार हुआ। जैसे आप थे वैसे ही बने रहे। आपने एक नई बात जान ली कि मृत्यु के पीछे भी जीवन है। संभव है इससे चित्त को सन्तोष हो परन्तु उससे क्या लाभ ? आप कहते हैं कि यह जान कर कि मैं फिर जन्म लूंगा मुझे धैर्य होता है। फिर क्या ? यदि आपको निश्चय हो गया कि जीव का नाश नहीं होता तौ भी आपके संकट दुःख और सुख पुनर्जन्म होने पर भी वैसे ही बने रहेंगे। इस कारण यदि यह सत्य भी हो तो भी मैं इसकी चिन्ता नहीं करता। अमृतत्व भविष्य में नहीं अमरता शाश्वत जीवन अथवा और कोई संज्ञा उसे दें परन्तु वह वर्त्तमान में ही है। और वर्त्तमान अवस्था को आप तभी समझ सकते हैं जब आप काल की गति से अव्याहत रहें। अब मुझे कुछ गूढ़ विचार

करना पड़ेगा इसके लिये आप मुझे क्षमा करें ! विचार बहुत गूढ़ भी नहीं है । जब तक मन काल का अनुगामी रहेगा तब तक मृत्यु का भय रहेगा भविष्य की जिज्ञासा रहेगी और यह प्रश्न सदा बना रहेगा । जब तक आपके चित्त में भय रहेगा तब तक जीते जी आप मृत्यु के मुख में पड़े रहेंगे । भविष्य की जिज्ञासा से ही स्पष्ट है कि आप मृत्यु के त्रास से पीड़ित हैं । जीवन की पूर्णता के लिये शाश्वत वर्त्तमान के आनन्द के अनुभव के लिये मन काल से अव्याहत होना चाहिये । यही बात है न ? मैं काल शब्द का प्रयोग अवसर के अर्थ में नहीं करता जैसे गाड़ी छूटने का समय हो गया कार्य काल आगया मैं उसका व्यवहार स्मृति रूप में करता हूं । यदि आप प्रति दिन प्रातःकाल नये होकर उठें और अतीत समय के समस्त अनुभवों और चिन्ताओं को भूल जावें तो प्रत्येक दिन नवीन होगा और उसका अनुभव करना काल के पाश से मुक्त होना है । हमारा मन अनुभूत विषयों के बोझ से दब कर स्मृतियों का भंडार हो गया है ॥

मुझे आशा है कि आप कृपा कर मेरे कथन पर विचार करेंगे अन्यथा यह समझ में नहीं आवेगा । नये अनुभव नवीन सिद्धांत नई स्थिति और नये व्यवहार को हम अपने पुराने संस्कारों की दृष्टि से ही देखते हैं । वर्त्तमान अवस्था का बोध पुरानी स्मृति के आधार पर ही होता है । यदि आप ईसाई हैं तो आपके मन में ईसाइयों के भाव भरे हैं ईसाई धर्म को मानते हैं ईसाई मत के अनुयायी हैं तथा ईसाइयों के व्यवहार से परिचित

हैं और इसी परिचय के अनुसार आप आगे का व्यवहार चलाते हैं। यदि आप सामाजिक हैं अथवा अन्य किसी मत के अनुयायी हैं तो अपने सिद्धांतों विचारों और निश्चयों के अनुसार ही व्यवहार की क्रियायें करते हैं। आपके व्यवहार का आधार पुरानी स्मृति है इस कारण वर्त्तमान अवस्था का यथार्थ ज्ञान आपको कभी नहीं हो सकता। पुराना भ्रम अनुभव के रूप में वर्त्तमान है और स्मृति का आधार है इस कारण स्मृति निरन्तर बढ़ती जाती है इसी कारण भविष्य जीवन को जानने की इच्छा होती है। परन्तु यदि आप अपना व्यवहार शुद्ध रखें और समय के अनुसार ही कार्य करें न पिछले संस्कारों के झगड़े में पड़ें न भविष्य की चिंता करें तो मृत्यु का भय छूट जावेगा। तब जीवन आनन्दमय हो जावेगा संकट सब छूट जावेंगे परंतु इसके लिये सावधानी तथा वर्त्तमान स्थिति के विशेष ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है॥

मुझे शंका है कि प्रश्नकर्त्ता को संतोष नहीं हुआ क्योंकि वे हां या नहीं के रूप में स्पष्ट उत्तर चाहते थे परंतु मैं स्पष्ट उत्तर दे नहीं सकता। हां अथवा नहीं के उत्तर से शंका होना चाहिये। क्या यह प्रश्न अधिक महत्व का नहीं है कि मैं अपना जीवन कैसे व्यतीत करूं कि इस बात की चिंता में पड़ूं कि मृत्यु के पीछे क्या होगा। जो लोग मृत्यु के पाश में फँसे हैं उन्हीं को यह जानने की इच्छा होती है कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है? जीवन का आनन्द अनुभव करने वालों को नहीं। इस कारण हमें इस विषय की जिज्ञासा होना चाहिये कि हम पूर्ण आनन्दमय

सार्थक दैवी जीवन कैसे व्यतीत करें न कि परलोक में क्या है? जब वर्त्तमान जीवन गम्भीर और विचार मय होगा तो भविष्य का ज्ञान सुलभ हो जावेगा। वह ज्ञान सिद्धांत के आधार पर नहीं अनुभव के आधार पर होगा तब आपको विदित होगा कि इस प्रश्न का कोई महत्व नहीं क्योंकि परलोक कुछ नहीं। जीवन अखंड अनादि और अनंत है और इस आनंद के अनुभव से वर्त्तमान जीवन का विकास पूर्ण हो जाता है॥

प्रश्न—क्या ब्रिटेन राष्ट्रवादी हो जावेगा और क्या राष्ट्रवाद फैल रहा है?

उत्तर—कोई मत जिसका आधार स्वार्थ जाति भेद तथा भय का बिस्तार हो उन्नति नहीं कर सकता न सच्चा माना जा सकता है। मैंने राष्ट्रवाद की कुछ पुस्तकें पढ़ी हैं उनमें स्वत्वों के दैवी अधिकारों का वर्णन है जाति भेद राष्ट्रीयता तथा सीमा नियत करने की आवश्यकता मानी गई है। ऐसा मत सार्वजनिक नहीं हो सकता। जो मत इन बंधनों को तोड़ने का प्रयत्न करे और जिससे लोगोंकी बुद्धि और विवेक की वृद्धिहो वही सच्चा माना जा सकता है वही मत सत्य है शुद्धहै और जनताके लिये आदरणीय है आप जानते हैं कि आप ही लोग इन मतों का समर्थन और खंडन करते हैं। यदि ये मत आप लोगों की कामनाओं को पूरा करें स्वत्वों को रक्षा करें ऐश्वर्य को बढ़ावें धर्म और व्यवहार की मर्यादा स्थिर रखें तो ये मत आपको मान्य होजाते हैं परन्तु यदि इनको घटाने की युक्ति सोचें अथवा ममता की निःसारता प्रगट

कर तो दूषित समझे जाते हैं। मैं स्वाभाविक स्वार्थ बुद्धि को नहीं मानता। स्वार्थबुद्धि कल्पित तथा दूषित समाज की रची हुई है। मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी नहीं होते उन्हें कल्पित परिस्थिति की शिक्षा मिली है। इस कारण साम्यवाद फैल रहा है या नहीं यह प्रश्न व्यर्थ है मुख्य बात तो यह है कि आप लोग समझ जावें कि जब तक इस अनेकराज्ययुक्त संसार में स्वार्थ बढ़ता रहेगा धार्मिक तथा लौकिक उन्नति का ध्यान रहेगा तब तक संसार में दुःख रहेगा कष्ट बने रहेंगे युद्ध होगा कुटिलता रहेगी और सच्चे प्रेम का अभाव रहेगा। इस कारण आप लोग विचार करें कि आप लोगों के मत और विधान का आधार स्वार्थबुद्धि है या नहीं॥

———

वसन्तशाला के उद्यान में दूसरा व्याख्यान

मार्च ३१, १९३४

मित्रगण!

जो लोग विचारशील हैं वे उस पदार्थ की खोज में हैं जो अपरिणामी हो और जहां जीवनका पूर्ण विकास हो और उस तत्व को वे ईश्वर सत्य अथवा ब्रह्म कहते हैं मुझे इस सत्ता का ज्ञान है यह निर्विकार पूर्ण और अनादि है परन्तु जैसा मैं पिछले दो व्याख्यानों में कह चुका हूँ सत्य की जिज्ञासा करना भ्रम है क्यों कि उस सत्ता का अनुभव होता है दर्शन नहीं। इन दोनों का अन्तर आप लोग समझ गये होंगे। यदि आप सत्य की खोज करना चाहें तो सत्य की मूर्ति का ध्यान आपके हृदय में होना चाहिये परन्तु यदि आप उसका अनुभव करना चाहें तो वह अनुभव सत्य होगा खोज नहीं। इस कारण आज मैं आप लोगों को खोज की नहीं उसका अनुभव करने की युक्ति बताऊंगा॥

पहिले तो सत्य खोज करने से नहीं मिलता क्योंकि जब हम किसी पदार्थ को ढूंढ़ते हैं तो इससे प्रगट होता है कि जिस उलझन में हमारे मन और हृदय फँसे हैं उससे भागने की चेष्टा हम लोग कर रहे हैं परन्तु जब हमें उन बन्धनों का ज्ञान होजाता है जिनमें हम भय के कारण फँस गये हैं और हम जब अपने मन को उस भय और उन बन्धनों से मुक्त कर देंगे तो हमको अनन्त जीवन का आनन्द प्राप्त होगा। इस कारण सत्य की जिज्ञासा

करने के बदले हमको उन बन्धनों की मीमांसा करना चाहिये जो हमने भय के कारण बना रखे हैं और भय तथा उससे उत्पन्न अनेक बन्धनों की मीमांसा करने से हमें उस तत्व का ज्ञान हो जावेगा जो कि वर्णन से परे है ॥

जो मनुष्य कारागार में पड़ा है ऐसे कैदी के साथ स्वतन्त्रता की बात करने से कुछ लाभ नहीं। जेल से छूटते ही उसे स्वतंत्रता का बोध हो जावेगा। परन्तु हम लोग बन्धनों को न जानते हुये भी स्वतन्त्रता का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं परन्तु जब तक हम लोग केवल स्वतन्त्रता सत्य तथा जीवन के आनन्द की खोज करते रहेंगे तब तक हमें बोध न होगा संकीर्ण चित्त की मिथ्या कल्पना ही होगी परन्तु यदि हम इस तत्व का पता लगावें कि हमारे चित्त और हृदय किस प्रकार के बन्धन में पड़े हैं और फिर मनको उन बन्धनों से छुड़ाने का प्रयत्न करें तो निःसन्देह हमें उस सत्ता का ज्ञान प्राप्त हो जावेगा।

वे बेड़ियां क्या हैं जो हमने पहिन रखी हैं ? क्या पहिली बेड़ी भय के कारण प्रमाण की कल्पना नहीं है ? मन किसी न किसी प्रमाण के आधार पर काम करता है उसे बाहरी प्रमाण की अथवा शासन की अपेक्षा रहती है जिसकी प्रेरणा से और जिसके अनुसार वह काम करे वह प्रमाण चाहे धार्मिक हो चाहे सामाजिक अथवा मनमें कल्पित हो। आप लोग जानते हैं कि पहिले हम बाहरी प्रमाण मानते हैं क्योंकि हम लोगों में स्वयं जानने सोचने और करने की शक्ति नहीं होती इस कारण हम धर्म गुरु अथवा समाज

की आज्ञा का पालन करते हैं। फिर हम विचार करने लगते हैं बाहरी प्रमाणों से विमुख हो जाते हैं और अभ्यन्तर प्रमाण की कल्पना कर लेते हैं यह अभ्यन्तर नियम बाहरी नियमों का प्रतिवाद होता है। हम उन बाहरी प्रमाणों की मीमांसा नहीं करते जिनके अनुसार हम चल रहे हैं परन्तु उनको त्याग कर व्यक्तिगत नियमों को ढूंढ़ने और उनके अनुसार चलने का उद्योग करते हैं। प्रायः लोग यही करते हैं। एक तो बाहरी प्रमाण होता है जिसे वे त्यागते अथवा समझते हैं दूसरा भीतरी प्रमाण कल्पित कर लेते हैं जो उनके मन में ही रहता है॥

मेरे मत में प्रमाण चाहे बाहरी हों अथवा भीतरी सब एक से हैं क्योंकि प्रमाण वही है जिसे कोई माने उसके अनुसार चले उसकी आज्ञा पाले उसके वश में रहे चाहे वह बेड़ी बाहर की हो अथवा भीतरी उद्योग और प्रयत्न से बनाई गई हो मेरे मत में यह पहिली बेड़ी है। जो मनुष्य यह समझता है उसे प्रमाण की आवश्यकता नहीं। वह बुद्धि के अनुसार चलता है और बुद्धि किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखती। यह आप लोगों को स्पष्ट हो गया होगा। पहिले मनुष्य सामाजिक और धार्मिक नियमों का दास बना रहता है फिर संकट और क्लेश झेल कर भीतरी प्रमाण बना लेता है और कहता है कि यह मेरा अनुभव है जो बात मैंने मन में सोची है मैं वही करूंगा। जब तक मन केवल आज्ञा का पालन करता है तब तक उसे बोध नहीं हो सकता। बोध अनुभव स्वरूप है और बाहरी विधानों से अथवा मन की कल्पनाओं से आरोपित नहीं किया जा सकता।

अब उसी बात को मैं दूसरे ढंग से कहता हूं। हम लोगों के चित्त पर शिक्षा राजनीति सामाजिक व्यवहार अथवा परिस्थिति के द्वारा बाहरी भावनाओं का प्रभाव डाला जाता है। हमें अनुभव होता है कि इस प्रभाव के द्वारा हमारे व्यक्तिगत विचारों पर रोक लगाई जाती है जिससे हमारे भाव दृढ़ होते हैं हम समझते हैं कि ये भाव हमारे हैं और हम उनकी पुष्टि करना चाहते हैं। हम लोगों ने यही किया है। हम लोगों ने बाहरी प्रमाणों की उपेक्षा की है और भीतरी प्रमाण मान रहे हैं जिनको हमने स्वीकार कर लिया है और हम समझते हैं कि हमने बड़ी उन्नति की है, हम लोगों ने केवल बाहरी प्रमाणों का तिरस्कार करके अपनी भावनायें स्थापित करली हैं और हम उन्हीं के अनुसार चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। मेरे मत के अनुसार यह अनुसरण अनुकरण आदर्श मानना वश में होना आधिपत्य स्वीकार करना यही पहिला बन्धन है जिस से हमें अपने अनुभव का बोध नहीं होता अथवा बुद्धि का पूर्ण विकास नहीं होता क्योंकि जब हमारा मन आज्ञा का पालन कर रहा है वशीभूत है तो सिद्धि के लालच में फंसा है। हम लोग ज्ञान बोध अथवा पूर्णता को संचय के रूप में समझते हैं अनादि प्रवाह के रूप में नहीं। जो वस्तु मृदु होती है वह शीघ्र नहीं टूटती परन्तु जो पदार्थ अनेक संचयों के भार से दृढ़ हो जाता है वह कड़ा हो जाता है इस कारण नये भावों को ग्रहण नहीं कर सकता।

आप लोगों के मुख की आकृति देख कर मुझे यह शंका होती

है कि आप लोग मेरे कथन को समझ नहीं रहे हैं। क्षण भर ठहरिये एक या दो व्याख्यान सुनने से मेरा आशय समझ में नहीं आवेगा, केवल श्रवण से बोध नहीं होता कार्य के आचरण से होता है ॥

अथवा यों समझिये चित्त और हृदय परिस्थिति के परिणाम हैं इस कारण तुम्हारे विचार और भाव परिस्थिति के वशीभूत हैं। यह मत कहो कि बस—इतना ही । इनमें कुछ तो तत्व अवश्य होगा । मैं कह रहा था कि इसको जानने के लिये हम अपने अनुभव के आधार पर चलें अज्ञात विषयों के आधार पर नहीं जिनके सम्बन्ध में हम केवल अनुमान कर सकते हैं। इस प्रकार मन हृदय विचार और भावना ये सब परिस्थिति के कार्य हैं और जब तक आप लोग इनके वश में रहेंगे बोध असम्भव है। परिस्थिति वश में कर लेने पर ही बोध हो सकता है ॥

इसका अर्थ यह हुआ कि सामाजिक नियम और धर्म का विधान जिसके अन्तर्गत हमारे सिद्धान्त मत प्रमाण तथा नाना प्रकार के पाखंड हैं परिस्थिति के अंश हैं और हमारा मन परिस्थिति का दास है। उदाहरण के लिये मान लीजिए कि आपकी जीविका का आधार मन की वृत्ति है जैसा कि साधारण नियम है तो प्रायः आप अपनी श्रद्धा के वश में रहेंगे। मान लीजिये कि आप लोग सनातन धर्म के अनुयायी हैं और किसी सद्धर्मी के यहाँ नौकरी करना चाहते हैं अथवा सद्धर्मी होकर किसी सनातनी का आश्रय ढूंढ़ते हैं तो आपको अपने भाव छिपा कर अथवा

क्षण भर के लिए उसके धर्म को स्वीकार करके धन कमाना पड़ेगा क्योंकि धन का संग्रह आवश्यक है और यदि उन लोगों को आपके भावों का पता लग जावे तो आश्रय मिलना कठिन हो जावेगा। बाहरी परिस्थिति के द्वारा आप परतन्त्र हैं इस प्रकार आप के भाव परिस्थिति के परिणाम परिस्थिति के अनुकूल हैं और जब तक आप लोग समाज और धर्म के बन्धनों को तोड़ नहीं डालते आप लोगों के विचारों और भावों का कोई मूल्य नहीं क्योंकि ये भय से उत्पन्न परिस्थिति के अनुसार नियत किये गये हैं॥

इस कारण अनादि और अनन्त तत्व के बोध के लिए व्यक्ति को परिस्थिति से संघर्ष करना पड़ेगा और इसी संघर्ष के द्वारा बन्धनों का विच्छेद संभव है। हम लोग अज्ञान अथवा प्रमाद वश समाज अथवा धर्म के इतने नियम स्वीकार कर लेते हैं और उन को सच मानने लगते हैं कि परम्परा के अनुसार हमारा मन उसी सांचे में गढ़ जाता है और बिना समझे हम उन बातों को मान लेते हैं और उन के जाल में फंस जाते हैं। इस कारण निरन्तर विवेचन के द्वारा हम सावधान होकर परिस्थिति के बन्धनों से चित्त को छुड़ा कर परिस्थिति को वश में कर सकते हैं॥

प्रश्न—आप के व्याख्यानों में पुण्य के महत्व का कोई वर्णन नहीं दिखाई पड़ता। ऐसा क्यों, क्या सत्य के अवगम में पुण्य का कोई भाग नहीं ?

उत्तर—पुण्य आप किसे कहते हैं, क्या आपका पुण्य पाप का

विरोधी है क्या भय के विरुद्ध साहस अथवा धृष्टता को आप पुण्य कहते हैं ? पहिले तो भय प्रतीत होता है फिर आप साहस की आवश्यकता को मानने लगते हैं इस कारण आप साहस की इच्छा करते हैं क्योंकि आप भय से भागते हैं और भय से भागने को आप साहस समझते हैं यही पापका विपरीत पुण्य है । मेरे मत में पुण्य का संचय करने वाला पुण्यात्मा नहीं । यदि आप भय का कारण ढूंढ़े केवल साहस के द्वारा भय का संवरण न करें परन्तु भय का निदान जानने का प्रयत्न करें तो न भय रहेगा न साहस आप इस द्वन्द्व से मुक्त हो जावेंगे ॥

अन्ततः पुण्य केवल मिथ्या संसार का धर्म है न ? संसार में चलने के लिये धर्म पालना आवश्यक है आज कल यही चरित्र है । समाज ने निश्चय किया है अथवा हम लोगों ने मान लिया है कि त्याग धर्म का अंग है । हमारी समाज में परिग्रह पड़ोसियों से निरन्तर झगड़े की जड़ है चाहे वह ज्ञान हो अथवा अज्ञान हो परन्तु बखेड़ा स्वार्थ साधन और पराई हानि का अंश उसके साथ सदा रहता है और जो मनुष्य इस प्रकार के आचार से बचा रहता है वही धार्मिक कहलाता है वही सज्जन है परन्तु मेरे मन में इन बातों से तथा धर्म अथवा शील से कोई सम्बन्ध नहीं ॥

यदि परिस्थिति बदल जावे यदि समाज में परिवर्त्तन हो जावे तो परित्याग और परिग्रह में कोई भेद न रहेगा फिर परिग्रह न पुण्य होगा न पाप । वर्त्तमान समय में समाज की स्थिति जैसी

है इन मिथ्या व्यवहारों से सम्बन्ध तोड़ना पुण्य अथवा पाप गिना जाता है। परन्तु जिस संसार में हमारा मन और हृदय लिप्त हैं उसकी स्थिति बदलने से पुण्य और पाप का अर्थ ही बदल जाता है क्योंकि मेरी दृष्टि में न पाप हेय है न पुण्य ग्राह्य है।

मेरी दृष्टि में पाशव अनार्य विचारहीन मूढ़ जीवन स्वाभाविक नहीं स्वाभाविक पूर्ण स्वतंत्र सार्थक और विचारशील जीवन तभी हो सकता है जब आप सामाजिक व्यवहार के गुण दोष पहिचानें और असत्य त्याग कर सत्य को ग्रहण करें फिर आप को धर्म पालन करने की कोई आवश्यकता न रहेगी।

इस कथन का सार यह है कि जब आप भयभीत होते हैं तो साहस की खोज करते हैं और शूरता को धर्म समझते हैं परन्तु तत्त्व क्या है? आप भय से व्यथित हैं और भय को छिपाने के लिये साहस प्रगट करते हैं। क्षण भर के लिये साहस से भय छिप जाता है परन्तु भय बना रहता है और अन्य रूप में प्रगट होता है। परन्तु यदि आप भय का निदान जान लें तो मन भय और साहस के द्वन्द्व से मुक्त हो जाता है।

प्रश्न—क्या आप समझते हैं कि मनोविश्लेष के द्वारा अव्यक्त ग्रंथियों और वासनाओं से मन मुक्त हो जावेगा और उस सुख की प्राप्ति करावेगा जिसका आप उपदेश देते हैं?

उत्तर—आपका प्रश्न है कि मन की अनेक ग्रन्थियां हैं और मन आत्मविश्लेष के द्वारा इनसे मुक्त हो सकता है कि मन नहीं।

और हृदय में अनेक विघ्न और संशय होते हैं जिन्हें हम ग्रंथियां कहते हैं वे अव्यक्त गुप्त रहते हैं। क्या हम उनसे छूट सकते हैं क्या हम आत्मविश्लेष के द्वारा उन्हें दूर कर सकते हैं और इस प्रकार व्यक्तिगत अभिमान की दृष्टि से मन को शुद्धकर सकते हैं ?

इस विषय को तनिक ध्यान से सोचना पड़ेगा क्योंकि सम्भव है कि आपने यह पहिली ही बार सुना हो और जटिल जान पड़े परन्तु ऐसा है नहीं। मेरे मत में मन की ये ग्रंथियां तभी छूट सकती हैं जब बोध पूर्ण हो जब आप के हृदय में चैतन्य का विकास पूर्ण हो जावे। आत्मविश्लेष की क्रिया में केवल मानसिक क्रिया होती है। मन के एक ही अंश से आप गुप्त ग्रंथियों को ढूंढ़ना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि आपकी सब गुप्त ग्रन्थियां बोध रूप में तब प्रगट होंगी जब आप वर्त्तमान स्थिति में पूर्ण बोध का अनुभव करने लगेंगे॥

अब मैं दूसरे ढंग से कहता हूँ। मान लीजिये कि आपको शृंगार की रुचि है। यह भाव साधारण है। आपको कैसे पता चलेगा ? मेरी समझ में आत्मविश्लेष से इसका पता नहीं लगेगा यदि आप केवल अतीत व्यवहार पर विचार करेंगे और इस प्रकार वासना की खोज करेंगे। पहिले तो आप यह जानना चाहते हैं कि आपके मन में शृङ्गार की रुचि है अथवा नहीं। आप इसका परिवर्त्तन नहीं करना चाहते केवल जानना चाहते हैं। क्षण भर ठहरिये। सोचिये। जब आपको पता लग जावेगा तब आप उस वासना के अनुकूल अथवा प्रतिकूल चलेंगे। पहिले

तो आपको वासना का पता लगाना है इसके लिये क्या उपाय करेंगे ? जब आपको पूर्ण बोध हो जब आपको कथन और मनन के समय ही वाक्य और मनकी गति का ज्ञान हो जावे पीछे नहीं। यदि आप भली भांति समझ रहे हैं कि मैं क्या कह रहा हूँ और क्या सोच रहा हूँ तब आपको मन की रुचि का पता चल जावेगा कि आपके मन की प्रवृत्ति शृङ्गार की ओर है या नहीं। केवल बैठ कर एक घटना पर विचार करने से कुछ न होगा। मैं जानता हूँ कि इसमें नाना प्रकार की शंकायें उत्पन्न होंगी परन्तु मैं सबका समाधान एक साथ ही नहीं कर सकता। परन्तु यदि आप विचार करेंगे तो आपकी समझ में आ जावेगा कि निरन्तर मनन करने से जिस कार्य में आप लगे हैं उस पर विचार करने से आप की अव्यक्त चेष्टायें प्रगट हो जावेंगी और इस प्रकार मन का मथन होने लगेगा और इस मथन के द्वारा आपके विघ्न आपके मन की ग्रन्थियां घुल जावेंगी॥

प्रश्न—आप आदर्श का अनुकरण करना जीवन के संग्राम से भागना समझते हैं ? क्या उच्चतम आदर्श में कोई तत्व नहीं है ?

उत्तर—हमें आदर्शों की क्या आवश्यकता है ? मैं यह नहीं कहता कि उनमें तत्व नहीं परन्तु हम उन्हें चाहते क्यों हैं ? हम कहते हैं कि उनकी हमें आवश्यकता इसलिये है कि प्रमाण आदर्श ध्येय के बिना हम लोग संसार के झगड़ों और झंझटों से निकल नहीं सकते। इसलिये हम आदर्श प्रमाण चाहते हैं जिसके द्वारा दैनिक जीवन में प्रत्येक कार्य की हम तुलना कर सकें। इससे

क्या सिद्ध होता है ? यही कि जिन झगड़ों झंझटों और विपत्तियों में हम फंसे हैं उनकी अपेक्षा हमें आदर्शों और प्रमाणों की चिन्ता अधिक है। ये झगड़े इतने बड़े जटिल और विस्तृत हैं कि उनसे बचने के लिये हम आदर्श मान लेते हैं। मेरी दृष्टि में झंझट दुःख और शोक के निदान जानने के लिये हमें प्रमाण अथवा आदर्श को आवश्यकता नहीं मनन करना चाहिये। जब आप किसी बड़ी उलझन में चिन्ता में फंस जाते हैं तो आपको आदर्श का ध्यान नहीं रहता कि क्या करना चाहिये क्या नहीं। आप चिंता में ऐसे मग्न हो जाते हैं आप केवल उद्धार चाहते हैं। उस समय आप उद्धार के लिये आदर्श नहीं ढूंढ़ते। जब विपत्ति क्षीण हो जाती है अथवा शान्त होने लगती है तब आप उद्धार के लिये आदर्श खोजने लगते हैं॥

मेरी दृष्टि में सभी आदर्श शोक को शान्त करने के उपाय हैं उनसे निवारण नहीं हो सकता। साधारण मनुष्य को लीजिये उसके अनन्त आदर्श हैं अनेक सिद्धान्त हैं जिनके अनुसार वह अपनी दिनचर्या पूरी करने का प्रयत्न करता है यदि वह विचार करे इस कारण उपस्थित और आदर्श स्थितियों में सदा झगड़ा होता रहता है। अब यदि उसे पता लग जावे कि यथार्थ सत्य क्या है और उसका मूल्य क्या है तो उसे शान्ति की मूल का पता चल जावेगा और जो मिथ्या आदर्श और प्रमाण उसे विशेष क्रम में बांधे हैं उनसे मुक्त हो जावेगा॥

प्रश्न—क्या आप साम्यवाद को मानते हैं ? जैसा आजकल संसार में प्रचलित है।

उत्तर—मैं नहीं जानता कि संसार में क्या लोकमत प्रचलित है इस कारण मैं नहीं कह सकता। अब इसे आप मत की दृष्टि से न देखें साधारण जनता की दृष्टि से विचार करें। जब आप लोग अपने को न्यूज़ीलैण्ड का निवासी मान रहे हैं और मैं अपने को हिन्दू समझ रहा हूँ तो सच्चा बोध कैसे प्राप्त हो सकता है ? हम लोगों में परस्पर क्या सम्बन्ध है ? हम लोगों में व्यवहार का घना सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? अथवा हम लोग जब विशिष्ट उपाधि धारण कर लें आप ईसाई हैं मैं हिन्दू हूँ हम लोगों के सिद्धान्त व्यवहार और धर्म भिन्न हैं तो सच्चा प्रेम कैसे हो सकता है ? हम लोग क्षमा की प्रशंसा करते हैं यह तो केवल बुद्धि का कौशल है जिसके द्वारा आप अपने स्थान पर रहें और मैं अपने स्थान पर और परस्पर मित्रता बनी रहे। मैं एकता की बात नहीं कहता। एकता तो है आप लोगों का एक मत एक सिद्धान्त एक धर्म है चाहे उस कारागार में आप लोगों में भेद हो शाखायें भिन्न हों परन्तु वह कारागार ही है और आप अपने कारागार की शोभा को बिगाड़ना नहीं चाहते और हिन्दू अपने कारागार की शोभा सुरक्षित रखना चाहते हैं इस कारण वे मैत्री चाहते हैं और यही भाव सहिष्णुता कहलाता है। मेरी समझ में तो यह सिद्धान्त ही मानव जाति की एकता के सच्चे सम्बन्ध का बाधक है। इस प्रकार कालान्तर में आप लोग

साम्यवाद के दास हो जावेंगे जैसे आजकल अर्थवाद के दास हैं परन्तु इस विवशता में स्वतंत्रता नहीं हो सकती जैसे अभी नहीं है। आप दोनों मतों में से किसी को मानें किसी के अनुसार चलें परन्तु आप स्वतंत्र नहीं, आप लोग केवल भेड़ों के समान हैं जो पूंजीपतियों के आश्रय में रहें चाहे साम्यवादियों के परन्तु परिस्थिति के वश में रहेंगे। यह सदाचार नहीं है न यह दशा पू आध्यात्मिक अथवा सत्य है। सच्ची स्वतन्त्रता तभी प्राप्त होगी जब आप लोग निज इच्छा से ऐसा करेंगे केवल उत्तेजना से नहीं गम्भीरता पूर्वक विचार कर के तभी आप का जीवन स्वतन्त्र होगा विवश होकर कार्य करने से नहीं ॥

प्रश्न—आप बेकारी का कारण क्या समझते हैं ?

उत्तर—आप जानते हैं कि हम लोगों ने अनेक युगों से अनेक पीढ़ियों से एक परिपाटी चलाई है जिसका आधार व्यक्तिगत स्पर्धा और निरंकुश स्वार्थ है जहां चालाक धूर्त उन्नति के शिखर पर पहुँच जाते हैं और संचालन का सम्पूर्ण कार्य अपने हाथ में कर लेते हैं। यह स्पष्ट है। हम यही सर्वत्र देखते हैं और ठीक ही है जब कि संपूर्ण संसार अनेक राष्ट्रों में विभक्त है जो कि व्यक्तिगत लाभ और स्वार्थ की पराकाष्ठा हैं तब धन का विषम विभाग स्वाभाविक है और बेकारी भी तदनुसार ही है ॥

अब आपने देख लिया कि इसका निर्णय कितना सरल है आपके लिये यह जटिल हो यद्यपि आप लोगों की विद्वत्ता अधिक है और आप लोगों ने अधिक अध्ययन किया है

परन्तु मेरे लिये इसका निदान सुगम है। अब करना क्या चाहिये ? आप कहेंगे कि उद्योग की दशा पर विचार क्यों नहीं करते आर्थिक दशा को बदलने का प्रयत्न करो फिर सब ठीक हो जावेगा इसी विषय पर ध्यान क्यों न दिया जावे फिर दशा सुधारी जावे। परन्तु मैं उस समाज को कैसे बदल सकता हूँ जिसके अंग हम और आप हैं। उसमें हम परिवर्त्तन कैसे कर सकते हैं ? पहिले हम उसे समझें फिर जीवन की प्रक्रिया को बदलें। केवल आर्थिक दशा को लेकर यह नहीं कह सकते कि पहिले इसे ठीक करो फिर सब ठीक हो जावेगा। आर्थिक समस्या तो समस्त मानवी स्थिति का लक्षण है इस कारण यदि हम युक्ति संगत मत का प्रचार कर सकें और समस्त संसार के व्यवहार को शुद्ध कर सकें तो निःसन्देह हम आर्थिक समस्या की भी उचित मीमांसा कर लेंगे। इसलिये मैं समझता हूं कि हमें जनता के भावों को ठीक करना चाहिये केवल सिद्धान्तों को नहीं व्यवहार को भी। फिर जब जनता के भाव ठीक हो जावेंगे तो युक्ति संगत होने के कारण किसी भी युक्ति संगत संस्था के द्वारा आर्थिक दशा ठीक कर ली जावेगी॥

प्रश्न—आप न स्वार्थ को मानते हैं न धन संग्रह को ? परन्तु दोनों में से किसी के बिना आप संसार में कैसे भ्रमण करेंगे और व्याख्यान देंगे ?

उत्तर—इसका उत्तर बड़ा सरल है। यदि धन संग्रह के बिना संसार में रहना हो तो किसी निर्जन टापू में रहना पड़ेगा। जैसा

व्यवहार संसार में प्रचलित है इसके अनुसार प्राणयात्रा के निर्वाह के लिये संसार में रहना और धन का संग्रह करना पड़ेगा।

अब विचार कीजिये कि धनका संग्रह क्या है ? यदि आप अपनी आवश्यकताओं को नहीं जानते तो आपको धन संग्रह करना पड़ेगा परन्तु यदि आप अपनी आवश्यकताओं को जान जावें तो संग्रह करने की कोई आवश्यकता नहीं परन्तु इसके लिये विशद बुद्धि चाहिये, हम नाना प्रकार के पदार्थों का संग्रह करते हैं क्योंकि हम समझते हैं कि अनेक वस्तुओं के संग्रह से हमें सुख मिलेगा। इस कारण इन पदार्थों के संग्रह के लिये हमें धन का संचय करना चाहिये। परन्तु यदि आप मुख्य आवश्यकताओं पर विचार करें तो धन के संचय की कोई आवश्यकता नहीं। मैं अपनी आवश्यकताओंको जानता हूं। भ्रमण के लिये मित्र मुझे जहां जाने की प्रेरणा करते हैं वहां मैं जाता हूं। यदि वे प्रेरणा न करें तो मैं न जाऊं। यदि मैं व्याख्यान अथवा उपदेश न दूं तो मैं कुछ और काम करूंगा। अब यदि मैं आप लोगों को किसी विशेष मत में लाना चाहूं और उस मत के प्रचार के लिये धन का संचय करूं तो संग्रह करना पड़ेगा। जो मैं कह रहा हूं यह अटल सत्य है चाहे आपको रुचे अथवा न रुचे परन्तु बुद्धिमान लोग बिचार करके अटल सत्य को मान लेते हैं इस कारण मुझे धन के संग्रह का भान नहीं होता क्योंकि मैं जानता हूं कि मैं धन न जोड़ता हूं न मैं स्वार्थ परायण हूं॥

स्वार्थ बुद्धि का त्याग करने के लिये बड़े विचार की आवश्य-

कता है जिस से हम धोखा न खावें क्योंकि अपने को निःस्वार्थ समझने में धोखा हो सकता है । मनुष्य यह समझता है कि मैं निःस्वार्थ हूं परन्तु धोखा खा जाता है। आवश्यकता पूर्ण होते ही धन की बांछा न रहना चाहिये न धन पर आपकी ममता होना चाहिये ।

प्रश्न—क्या आपको आश्चर्य होगा यदि ईसा मसीह सहसा प्रगट हो जावें और प्रत्येक मनुष्य उनके दर्शन कर सके ?

उत्तर—आप जानते हैं कि मन चमत्कार अद्भुत दृश्य तथा अलौकिक घटनाओं को देखने के लिए उत्सुक रहता है ! यह बात नहीं है कि चमत्कार मिथ्या है अथवा अलौकिक घटनायें होती ही नहीं परन्तु हम उनके लिए इस कारण लालायित रहते हैं कि हमारे चित्त और हृदय ऐसे रिक्त शून्य दुःखी और मलिन हैं कि इन चमत्कारों और घटनाओं के पीछे दौड़ने से चित्त का सन्ताप कुछ काल के लिये लुप्त हो जाता है। जितनी ही लालसा आपके चित्त में चमत्कारों और घटनाओं के देखने की होती है उतनी ही रिक्तता और प्रेम का अभाव आपके हृदय में हैं । जब चित्त संतोष से पूर्ण होता है तो दिव्य चमत्कारों और अपूर्व घटनाओं का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । हम लौकिक और दिव्य पदार्थों में भेद इस लिये करते हैं कि हमारा भौतिक जीवन ऐसा सन्तप्त और कुत्सित है । हम इस जीवनसे खिन्न हैं और जो कोई मनुष्य

अलौकिक दृश्य दिखा सकता है उसी के अनुयायी हम हो जाते हैं और उसे हम दिव्य समझते हैं परन्तु वह घोर स्थूल प्रपंच के अतिरिक्त कुछ नहीं। सच्चा योग वही है जिसमें चित्त और हृदय की पूर्ण एकाग्रता होकर सुख का अनुभव हो क्योंकि यह दशा बोध की होती है और उसी बोधमें जीवनका आनन्द प्रतिष्ठित है।

———

न्यूजीलैण्ड के ब्रह्म विद्या प्रचारक मण्डल के सभ्यों को संवाद ३१-३-१९३४

मित्रगण,

कुछ प्रश्नों का उत्तर देने के पहिले मैं कुछ कहना चाहता हूँ, पहिले तो मैं यही कहना चाहता हूं कि जो कुछ मैं कहूँ उसे आप लोग सम्प्रदाय की दृष्टि से न देखें। आप लोग प्रायः ब्रह्म विद्या के जिज्ञासु हैं और आप लोगों के सिद्धान्त और विचार नियत हैं और आप लोगों को विशेष मत की शिक्षा मिली है और आप लोग समझते हैं कि मेरा मत इसके विरुद्ध है मैं दूसरे मत का अनुयायी हूँ जिसके आदर्श और सिद्धान्त आपके मत से भिन्न हैं। मेरे कथन को आप विवेक की दृष्टि से देखें यह न समझें कि हम यह मानते हैं आप नहीं इस कारण हम लोग इन सिद्धान्तों को मानते हैं जिनका आप विरोध करते हैं। इस भाव से विरोध प्रगट होता है बोध नहीं। आपके कुछ विचार ऐसे हैं जिन्हें आप गुप्त रखना चाहते हैं और यदि कोई आप से पूछे कि आपका मत क्या है तो आप उसी समय यह कहेंगे कि मेरे मत पर आक्षेप होता है मेरा उद्देश्य किसी प्रकार आक्षेप करने का नहीं परन्तु यदि आप अपने मन की मीमांसा करना चाहें तो मैं योग देने को प्रस्तुत हूं। यदि आपका मत सत्य है तो उस पर आक्षेप कोई नहीं कर सकता और यदि कोई आक्षेप करे भी तो क्या हानि ? परन्तु आप अपने मत की मीमांसा विचार के द्वारा ही

कर सकते हैं उसको छिपा कर अथवा उसका मंडन करके नहीं ॥

जहां कहीं मैं जाता हूं ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु अन्य संस्थाओं के सदस्यों के समान मुझे व्याख्यान देने को कहते हैं परन्तु ब्रह्म विद्या के जिन प्रचारकों के साथ मैं रहा हूं दुर्भाग्यवश उनके मन में यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि मैं उनके सिद्धान्तों पर आघात कर रहा हूं उनके प्रिय भावनाओं का विध्वंस करना चाहता हूं जिनकी रक्षा करना उनके लिये आवश्यक है। परन्तु मैं समझता हूं कि यदि हम लोग एक साथ बैठ कर विचार करें तर्क करें और अपने गूढ़ भावों की समीक्षा करें तो किसी मत अथवा सम्प्रदाय की शरण बिना लिए ही हमको सत्य का पता लग जावेगा क्योंकि सत्य किसी सम्प्रदाय की सम्पत्ति नहीं। न सत्य पर मेरा अधिकार है न आपका। इसी भाव से मैं आप लोगों के सन्मुख कह रहा हूं तथा सर्वत्र। मैं आपको इस विषय की समीक्षा में सहायता देना चाहता हूं कि आपका मत सत्य है अथवा अभिमान आत्मरक्षा कथन की पुष्टि अथवा चित्त के आश्वासन के लिये मान लिया गया है। ऐसे सिद्धान्तों का कोई मूल्य नहीं यद्यपि ये निश्चित सुरक्षित और बोध युक्त जान पड़ते हैं।

अब महाशयो मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरी दृष्टि में सत्य का कोई रूप नहीं। हम लोग विशेष कर ब्रह्मवादी तथा कुछ और लोग भी यह कहा करते हैं कि सत्य के अनेक रूप हैं ईसाई धर्म बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म आदि। इस से केवल यह जान पड़ता है कि हम लोग अपने मन के अनुकूल मतों और भावनाओं

की रक्षा करना चाहते हैं और अन्य लोगों की भावनाओं का विरोध नहीं करना चाहते। मेरे मत में तो सत्य का कोई रूप नहीं वह अद्वितीय है और जो वस्तु पूर्ण है उसका रूप नहीं होता वह अनेक वर्णयुक्त दीपकों के प्रकाश के समान नहीं है। आप उस प्रकाश को रंगीन शीशों में बन्द करना चाहते हैं और यदि आपका प्रकाश हरा है तो लाल प्रकाश के साथ सहिष्णुता वर्त्तना चाहते हैं और सहिष्णुता का शब्द गढ़ते हैं जो इतना कृत्रिम और नीरस है कि उसका कोई मूल्य नहीं। आप अपने भाई अथवा बच्चों के साथ सहिष्णुता का वर्त्ताव नहीं करते। जहां सच्चा प्रेम होता है वहाँ सहिष्णुता नहीं होती परन्तु जब मन फट जाता है तभी सहिष्णुता व्यवहार में आती है। मुझे चिन्ता नहीं है कि आप लोग मेरी बात मानें वा न मानें क्योंकि मेरा प्रेम किसी की श्रद्धा के आश्रित नही हैं। श्रद्धा तो कल्पित पदार्थ है परन्तु प्रेम पदार्थों का स्वभाव है और जब प्रेम क्षीण होजाता है तब हम संसार में भ्रातृभाव फैलाना चाहते हैं और सब धर्मों की एकता तथा सहिष्णुता का प्रचार करते हैं। परन्तु जहां सच्चा बोध होता है वहां सहिष्णुता की वार्त्ता नहीं होती ॥

बोध पुस्तकों के द्वारा प्राप्त नहीं होता। आप वर्षों तक पुस्तकों का अध्ययन करते रहें परन्तु यदि आप आचार की विधि नहीं जानते तो आपका ज्ञान क्षीण हो जावेगा क्योंकि उसमें कुछ सत्व नहीं सार नहीं। क्षण भर के ज्ञान से पूर्ण बोध से अक्षय शांति प्राप्त होती है। वह स्तब्ध शांति नहीं प्रवाहयुक्त अनन्त समता है। अब मैं प्रश्नों का उत्तर देता हूं ॥

प्रश्न—क्या संस्कार बंधन रूप न होते हुए भी उपयोगी हो सकते हैं ?

उत्तर—क्या आप सचमुच इस प्रश्न का निर्णय करना चाहते हैं अथवा केवल साधारण विचार करना चाहते हैं ? आप लोगों में से कितने मनुष्य संस्कारों का विधान करते हैं ? दुर्भाग्यवश यह विषय ब्रह्मविद्या जिज्ञासु समाज में विवाद का क्षेत्र बन गया है ॥ संस्कार क्या है ? गले में टाई बांधना स्नान करना भोजन करना अथवा सौन्दर्य की उपासना करना-क्योंकि इस विषय पर मैंने लोगों से वार्त्तालाप किया है और ये सब तर्क मेरे सामने आये हैं। लोग कहते हैं कि "हम देव मन्दिर में शोभा देखने जाते हैं इससे चित्त को विनोद होता है। क्या कपड़े पहिनना और दांत मांजना संस्कार नहीं है ?" इनको हम संस्कार नहीं कह सकते । शोभा का निरीक्षण करना संस्कार नहीं हो सकता। आप मन्दिर में अथवा किसी संस्कार में विनोद के लिये नहीं जाते। संस्कार का निश्चित रूप कुछ और ही है । जहां तक मैं समझता हूं आप लोगों की दृष्टि में संस्कार आध्यात्मिक उन्नति के साधन हैं अथवा इनके द्वारा आप संसार में आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना चाहते हैं। क्या हम इस बात पर दृढ़ रहेंगे और अविवक्षित तर्क न लावेंगे। क्या यह धारणा सत्य नहीं ? संस्कार वही है जिसके द्वारा आध्यात्मिक शक्तियों का संचार हो और लोगों की आध्यात्मिक उन्नति हो अब इनदो बातों पर हमें विचार करना चाहिये ॥

पहिले तो जब आप कहते हैं कि हम संसार में आध्यात्मिक उन्नति का विकास करते हैं तो आप कैसे जानते हैं कि यह सत्य है या तो आप प्रमाण मानते हैं किसी की आज्ञा अथवा शिक्षा को स्वीकार करते हैं अथवा अनुभव करते हैं कि प्रचार हो रहा है। प्रमाण को तो छोड़िये क्योंकि यह भोलापन है। यदि कोई कहे कि यह करो और आप करने लगें तो इसका कोई मूल्य नहीं चाहें कहने वाला कोई हो। तब हम बालकों के समान आचार्य्यों के अनुयायी हो जाते हैं इसलिये हमारे कामों की कोई सत्ता नहीं हम लोग केवल कठपुतली के समान इशारे पर चलने लगते हैं।

अब यदि हम यह समझें कि मन्दिर में जाने से हमें आनन्द मिलता है उत्साह बढ़ता है और भला लगता है। मैं अपमान नहीं करता परन्तु मद्यपान अथवा उत्तेजनायुक्त व्याख्यान का भी वही प्रभाव पड़ताहै फिरभी आप संस्कारको इतना महत्व आदर अथवा सम्मान क्यों देते हैं। यदि आप विचार करें तो उत्तेजना का कारण केवल सौन्दर्य का प्रभाव ही नहीं है। आप यह आशा करते हैं कि संस्कार में भाग लेने से किसी दैवी विधान के अनुसार आपके पाप धुल जावेंगे। मुझे तो यह बात अबोधयुक्त जान पड़ती है और ऐसी ही धारणाओं के कारण लोग भ्रम में पड़ जाते हैं। आपकी सत्ता पूर्ण है इस कारण चित्त और हृदय को शुद्ध करने के लिये किसी अन्य पदार्थ की सहायता अपेक्षित नहीं। स्वयमेव विचार करना है। इस कारण यह समझना कि संस्कारों के द्वारा हमें आध्यात्मिक बोध और मुक्ति की प्राप्ति होगी मेरी

दृष्टि में संसारी जीवों की मति के समान ही है। वे लोग संसार में मान चाहते हैं धन चाहते हैं इस कारण संचय करने लगते हैं सम्पत्ति जोड़ते हैं ठगते हैं क्रूरता करते हैं और जो मनुष्य आध्यात्मिक मान चाहता है वह भी यही करता है केवल उसे धर्म की उपाधि दे देता है। उत्कंठा केवल प्राप्ति की है और मेरी दृष्टि में प्राप्ति की इच्छा ही बंधन है। यदि आप लिप्सा के कारण संस्कार की क्रिया करते हैं तो सब संस्कार बंधन हा हैं! यदि आप संस्कारों को प्रधान अथवा आवश्यक समझते हैं तो आप विधान अथवा प्रथा के अनुसार ही चल रहे हैं। ऐसे चित्त को जीवन की सत्ता का बोध नहीं हो सकता। वह नहीं समझ सकता कि जीवन का सार क्या है॥

मुझे आश्चर्य है कि जहां मैं जाता हूं वहीं यह प्रश्न उठ खड़ा होता है विशेष कर उन लोगों में जो शिक्षित गिने जाते हैं (चाहे इसका अर्थ कुछ भी हो) जो लोग वर्षों तक दर्शन शास्त्रों का अध्ययन करते रहे हैं अथवा विचार करते रहे हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि वे लोग मतान्तर ढूंढते रहे हैं। आप लोग अपने प्राचीन मन्दिरों और मतों से खिन्न हो गये हैं और विनोद के लिये दूसरा खिलौना खोज रहे हैं और उसका मूल्य निर्धारित किये बिना ही उसे ग्रहण कर लेते हैं। जब तक आप लोग केवल प्रतिमा की उपासना में लगे हैं तब तक किसी वस्तु का यथार्थ मूल्य नहीं जान सकते॥

क्या इस उत्तर से आप लोगों को पूर्ण परितोष और बोध

होगया । मैं संस्कारों के विषय में लोगों से वार्तालाप करना चाहता हूं । मैंने कुछ लोगों से बातचीत की जिन लोगों ने हाल ही में धर्म की शरण ली है । वे लोग कोई उचित उत्तर नहीं देते प्रमाणों का आधार बतलाते हैं कि हमने ऐसा सुना है ऐसा ही कोई कारण अपने व्यवसाय का बतलाते हैं ॥

एक बात इसमें और है जो सर्वथा भिन्न है । लोगों की धारणा है कि संस्कारों में कुछ चमत्कार हैं मैं दैवी अथवा आसुरी चमत्कार का निर्देश नहीं करता—कि संस्कारों के द्वारा जीवन का रहस्य प्रगट हो जाता है । मैंने रोमन कैथौलिक ईसाइयों से बात की है उनका कथन है कि इसी कारण हम लोग मन्दिर में जाते हैं । यह हेतु ब्रह्म विद्या के जिज्ञासुओं ने मुझे नहीं बताया इस कारण यह आक्षेप आप मेरे ऊपर न करें । जीवन एक समस्या है जीवन का कुछ महत्व चमत्कार अवश्य है परन्तु इसका आवरण भेदना मिथ्या कृत्रिम धारणाओं से सम्भव नहीं इनसे रहस्य का उद्घाटन न होगा और मेरी दृष्टि में कर्मकांड की क्रियायें सब कृत्रिम हैं और लोगों को ठगने के साधन हैं ।

प्रश्न—यह कहा गया है कि जो शक्ति तुम्हारी वाणी को प्रेरित कर रही है वह दिव्य लोक की है इस कारण वह बुद्धि लोक के नीचे नहीं उतर सकती इस कारण यदि हम लोग तुम्हारा उपदेश समझना चाहें तो हमें बुद्धिपूर्वक सुनना चाहिये । क्या यह सत्य है ?

उत्तर—बुद्धि आप किसे कहते हैं ? बुद्धि शब्द से आप लोगों का क्या अर्थ है ? आप कहेंगे कि बुद्धि वह शक्ति है जिसके द्वारा तर्क किये बिना ही हमको स्वाभाविक ज्ञान प्राप्त होता है। अब मैं यह पूछता हूँ कि आपकी बुद्धि यथार्थ है अथवा केवल अव्यक्त प्रतिष्ठित आशा है सूक्ष्म भ्रमपूर्ण वासना है। आप जानते हैं कि जब कोई मनुष्य पुनर्जन्म की बात करता है अथवा पुनर्जन्म पर व्याख्यान देता है अथवा किसी पुस्तक में आप इस विषय को पढ़ते हैं तो आप उछल पड़ते हैं और कहने लगते हैं कि मुझे यह सच जान पड़ता है यह अवश्य सत्य होगा। इसे आप बुद्धि कहते हैं। क्या यह सचमुच बुद्धि है अथवा केवल दूसरे जन्म की आशा है इस कारण आप उसमें लिप्त हैं और उसे बुद्धि समझते हैं। क्षण भर ठहरिये। मैं यह नहीं कहता कि बुद्धि कोई वस्तु नहीं परन्तु जिसे साधारण लोग बुद्धि समझते हैं वह सत्य नहीं यदि उसमें विवेक तत्व अथवा बोध का आधार न हो॥

अब प्रश्नकर्त्ता ने पूछा है कि यह कहा गया है कि जो शक्ति मेरी वाणी को प्रेरित कर रही है वह दिव्य लोक की है इस कारण बुद्धिलोक के नीचे नहीं उतर सकती, जो मैं कह रहा हूँ उसका अर्थ आप लोग समझते ही होंगे क्योंकि यह स्पष्ट है, अब क्षण भर ठहरिये। जो कुछ मैं कहता हूँ उसका समझना सहज है परन्तु यदि आप उसका उपयोग न करें उसे कार्यरूप में परिणत न करें तो बोध न होगा। जब आप उसका प्रयोग नहीं करते तो आप कहते हैं कि वह बुद्धिगत है और यह कहा गया है कि मैं दिव्य

लोक की बात कह रहा हूँ इस कारण उसे समझने के लिये भावों को ऊंचा उठाना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यद्यपि जो कुछ मैं कहता हूँ उसे समझना कठिन नहीं परन्तु उसे कार्यरूप में परिणत करना दुष्कर है इस कारण हम पहिले अपना भावना ऊंची करें फिर इस विषय पर विवाद करें। क्या यह बात नहीं है? यदि आप कहें कि मैं नहीं समझता तुम क्या कह रहे हो तो फिर आगे बातचीत नहीं हो सकती। फिर मैं वही बात दूसरी विधि से कहूँगा जिससे उस विषय पर तर्क विचार वार्त्तालाप हो सके परन्तु यदि आप पहिले हा से यह मान लें कि मेरी बात समझने के लिये आपको अपनी भावना उच्च करनी पड़ेगी तो इसमें अवश्य कुछ गड़बड़ है। विचार के अतिरिक्त और उच्च भावना क्या है? आगे क्यों चलें? क्या आप नहीं समझते कि मैं कह रहा हूँ कि हम एक अव्यक्त दूरकी बातके अनुसार चलते हैं और उसी दृष्टि से हम व्यक्त सत्यको खोजते हैं इस कारण हम धोखे में प्रपंच में भ्रम में पड़ जाते हैं। परन्तु यदि हम अवगत विषयों से चलें जिनको विचार से जान लेना बहुत सरल है तो आप बहुत दूर तक सोच सकेंगे। परन्तु अव्यक्त से चलना और उस गूढ़ भेद के आधार पर जीवन की समस्या सुलझाने का प्रयत्न करना बुद्धि संगत नहीं क्योंकि सम्भव है कि यह भेद कल्पित मिथ्या बनावटी हो। चित्त की यह धारणा कि समझने के लिये अर्थ को बुद्धि द्वारा ग्रहण करना [illegible] असत्य हो सकती है इस कारण मैंने कहा था कि आप लोगों की बुद्धि भ्रान्त हो सकती है। जो बात मिथ्या हो

सकती है जिसमें आपकी आशायें भावनायें कामनायें और संकल्प वद्ध हैं उसके द्वारा आप अर्थ कैसे ग्रहण कर सकते हैं ? आप लोग कानों से अथवा बिचारसे क्यों नहीं सुनते। जब आप लोग बिचार की सीमा तक पहुंच जावें तब ऊपर जा सकते हैं। ऊंचे चढ़ने के लिये नीचे से आरम्भ करना चाहिए परन्तु जव पहिले ही से आप ऊपर चढ़ गये तो आगे चढ़ने की सम्भावना ही न रही। यही आप लोगों के क्लेश का कारण है। आप लोग तर्क के शिखर पर चढ़ गए हैं और आपका हृदय स्वभावतः शून्य और मानी है। यदि आप लोग समीप की दशा से आरम्भ करें तो आप लोगों को उन्नति के लिए तथा अनन्त विकास के लिए अवकाश मिलेगा॥

आप लोग जानते हैं कि ये सब उपाय वैभव की प्राप्ति के हैं। आचार्यों का यही नियम है कि वे लोग सरल समस्याओं को जटिल बना देते हैं। मुझे कुछ नई बात नहीं कहना है क्योंकि मैं बार बार यही कह चुका हूँ परन्तु मेरे कथन को उलझन में डालना उसपर प्राचीन कथाओं और कल्पनाओं की टिप्पणी करना और उन कल्पनाओं को स्वीकार न करना यही दोष का मूल है॥

प्रश्न—यदि किसी मनुष्य को ब्रह्म विद्या समाज विकास और सेवा का साधन जान पड़े तो उसे इस समाज को छोड़ने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—पहिले हमें यह देखना चाहिये कि यह बात सत्य भी है कि नहीं। छोड़ने अथवा न छोड़ने का प्रश्न नहीं है। अब इस बात पर विचार करना चाहिये॥

विकास के साधन का क्या अर्थ है ? क्या व्यवसाय अथवा विवाहसे विकास नहीं होता ? जब आप जीवन के निर्वाह के लिये परिश्रम करते हैं अथवा बच्चों के भरण पोषण के लिए उद्यम करते हैं तो क्या आपकी शक्तिका विकाश नहीं होता ? आपके इस कथन से सिद्ध होता है कि इन कार्यों में आपकी शक्ति का विकास नहीं होता इसी कारण विकास के लिए आपको समाज की आवश्यकता है यही ठीक है न ? मैं इसके कुछ गूढ़ अर्थ तो नहीं लगाता ? आप कहते हैं कि हम इस संसार रूपी कर्म क्षेत्र में अपनी शक्तिया का बिकास नहीं कर सकते क्योंकि यहां विकास होना असम्भव है इस कारण मैंने समाज को अपने विकास का साधन बना रखा है। यह ठीक है या नहीं ? मैंने तो आपका आशय यही समझा है ॥

आप अपना विकास कैसे करते हैं ? अन्य लोगों को दबा कर। जब आप आत्मविकास की चर्चा छेड़ते हैं तो उसका अर्थ औरों पर विजय प्राप्त करने का होता है। सच्चा विकास भी होता हैं जिस पर हम अभी बिचार करेंगे परन्तु इस विकास से प्रगट होता है कि आप कुछ दे सकते हैं इस कारण आपने समाज को साधन बनाया है। अब देखिए आप के पास देने को क्या है ? कोई चित्रकार गवैया अथवा विश्वकर्मा अथवा और कोई व्यक्ति यदि कुछ यथार्थ काम करता है तो वह विकाश का नाम भी नहीं लेता। उसका विकास तो हो ही रहा है वह चाहे व्यवसाय में लगा रहे घर में रहे अथवा किसी संस्था का सदस्य बन जाये। वह अपने विकास के लिए किसी समाज को साधन नहीं बनाता

चाहता। इसी प्रकार आपके "आत्मविकास" का यह अर्थ नहीं है कि आप समाज के द्वारा संसार को कुछ उपदेश अथवा कुछ और वस्तु देना चाहतेहैं। यदि आपके पास कुछ है तो आप देते ही हैंपरन्तु आप को इसका ज्ञानभी नहीं होता। फूल को अपने मनोहर रूप का ज्ञान नहीं होता। उसकी सुन्दरता स्वाभाविक है॥

"लोक सेवा करो।" क्या आप संसार के सच्चे सेवक हैं? आप लोग जानते हैं कि मैं चाहता हूं कि आप लोग सच्चे हृदय से शुद्ध भावना से बिचार करें यदि आप लोग सचमुच सच्चे हृदय से शुद्ध भावना से बिचार करेंगे तो आप संसार की सेवा कर सकेंगे परन्तु इस अद्भुत रीति से नहीं। अब देखिये हम संसार की क्या सेवा कर रहे हैं? इस समय अथवा किसी समय वर्तमान अथवा अतीतकाल में किस वस्तु की कमी है! उन लोगों की जिनमें मनुष्यता का पूर्ण विकास हो, अर्थात उन लोगों की जो अपने बिचारों और भावनाओं में फंसे नहीं है जो लोग अहंकार की वासना के वश में नहीं हैं। यदि आप संसार की सच्ची सेवा करना चाहते हैं तो आप किसी सम्प्रदाय अथवा समाज के बन्धन में न पड़ें अथवा किसी विशेष धर्म का आश्रय न लें। जब आप कहते हैं कि सब धर्म एक हैं तो किसी धर्म के अनुयायी क्यो बनें? धर्म और जाति तो बन्धन के रूप हैं और स्वतन्त्रता के बाधक हैं। यह संसार भर के इतिहास में प्रसिद्ध है। संसार में मत बढ़ते चले जाते है सम्प्रदायों और उनके आचार्यों की वृद्धि हो रही है फिर भी आप लोग भ्रातृभाव का चर्चा करते

हैं। जहां इतना गहरा स्वार्थ है वहां भ्रातृभाव कहां? क्योंकि जो स्वार्थ जातीयता और देश भक्ति का आधार है वह युद्ध का कारण अवश्य होगा। इससे जब आप भ्रातृत्व की चर्चा छेड़ते हैं तो सिद्ध होता है कि आप में वात्सल्य नहीं है। जिसके हृदय में प्रेम वात्सल्य होता है वह भ्रातृत्व का नाम भी नहीं लेता। आप अपनी बहिन से स्त्री से भ्रातृत्व का नाम भी नहीं लेते क्यों प्रेम स्वाभाविक है। जहां स्वार्थ है वहां वात्सल्य मानव समाज की एकता कहां? यदि आप सच्ची लोक सेवा करना चाहते हैं आप लोक सेवा की चर्चा करते है—यदि आप जनता को प्रपंच के जाल से व्यवहार के बंधन से छुड़ाना चाहते हैं तो आप लोग लोक सेवा का नाम भी न लेंगे आप ऊंचे पद पर आरूढ़ होकर दलितों के उद्धार का बीड़ा न उठावेंगे।

प्रश्न—क्या आप देवताओं के आवाहन की अनुमति देते हैं जैसे बीमारी में अश्विनी कुमारों का अथवा दाह कर्म के समय अग्निदेव का? क्या यह भी सब ढोंग और पाखंड हैं! (हंसी)

उत्तर—कुछ लोग हंसे परन्तु आप लोगों के भी सिद्धान्त और भावनायें हैं। आप लोग देवताओं को न मानें। कुछ और मत मानते हैं।

अब वरदान के लिये देवताओंके आवाहन की दृष्टिसे न देखिये यदि आप असाधारण हैं तो संसार में साधारण चमत्कार हो रहा है परन्तु हम लोग ऐसे असाधारण हैं कि हम असाधारण घटनायें चाहतेहैं। मैं इस प्रश्नका अनेक बार उत्तर दे चुकाहूँ। पहिले मान

लीजिये कि आप अस्वस्थ हैं और फिर वद्य की अथवा देवता की कृपा से चंगे हो गये। परन्तु यदि आप को रोग का कारण ज्ञात नहींहो तो आप फिर अस्वस्थ हो जावेंगे। मैंने भी उपचार कियाहै परन्तु अब मैं जीवन में कुछ और करना चाहता हूँ-मन और हृदय की चिकित्सा में आप लोगों को रोग का निदान समझाना चाहताहूँ और मैं आपको निश्चय दिलाता हूँ कि किसी देवता के आवाहन से अथवा वैद्य की सुश्रूषा से रोग का निदान नहीं जान सकते। उस समय आप का कष्ट निवृत्त हो जावें रोग के लक्षण शान्त हो जावें परन्तु जब तक आप रोग का निदान न जान लें जिसे अन्य कोई व्यक्ति नहीं जना सकता तो आप फिर रोग से ग्रसित हो जावेंगे परन्तु यदि आप रोग का कारण जान लेंगे तो स्वस्थ बने रह सकेंगे॥

प्रश्न—क्या आप की दया उन लोगों पर भी है जो आप की बात मानते हैं परन्तु समझते नहीं हैं ?

उत्तर—यह तो वही बात हुई कि हम आपका कथन बुद्धि पूर्वक सुनें। परन्तु शब्दों पर ध्यान न दें। केवल शब्दों का भेद है। आप जानते हैं बुद्धि मोल नहीं बिकती है। न पुस्तकों से प्राप्त होती है न व्याख्यान सुनने से। आप मेरी बातें वर्षों तक सुनें परन्तु इससे बुद्धि नहीं आवेगी। बुद्धि का विकास कर्म के द्वारा होता है। कर्म ही ज्ञान है ये दोनों भिन्न नहीं हो सकते। हम लोगों ने कर्म को विचार भाव तथा तर्क बुद्धि से पृथक् कर दिया है इसी कारण हम लोग धोखा खाते हैं॥

प्रश्न—क्या आप समझते हैं कि ब्रह्मविद्या जिज्ञासु मंडल का कार्य इस संसार में समाप्त हो गया और अब उसे कहीं एकान्त वास करना चाहिये ?

उत्तर—आप लोग जो इसके सदस्य हैं क्या समझते हैं ? क्या यह प्रश्न आप के प्रश्न से अधिक लागू नहीं हैं ? महाशय क्या मैं यह पूछूं कि आप लोग किसी समाज के सदस्य क्यों हैं ? आप लोग ईसाई ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु वैज्ञानिक ईसाई और ईश्वर जाने क्या२ क्योंहैं ? आप लोग इस प्रकार भिन्न और अलग क्यों रहते हैं ? आप कहेंगे कि इस सिद्धान्त इस मत से हमारा मन भरता है इस कारण मैं इसको मानता हूँ। अथवा आप समझते हैं कि इससे आपको सुख बोध अधिकार अथवा महत्व की प्राप्ति होगी। इस कारण मुझसे यह न पूछ कर कि इस समाजका भंग क्यों न कर दिया जावे आप अपने मन से ही क्यों नहीं पूछते कि वह इसमें क्यों रत है ? आप किसी समाज के अन्तर्गत क्यों हैं ? इसका कारण यह भारी भ्रम है कि हमें अलग रहना चाहिये पाश्चात्य समिति प्राच्य व्यायाम मंडल आदि। आप जानते हैं कि उपहार गृह भी भिन्न हैं। इसी प्रकार हम सब भिन्न भिन्न हैं हिन्दू अलग हैं, ईसाई अलग हैं। प्रत्येक मनुष्य में कुछ विशेषता है इस कारण वह अलग रहता है और विशेषता प्रगट करता है इस कारण भेद उत्पन्न होते हैं झगड़े बढ़ते हैं और सन्ताप की वृद्धि होती है। फिर मुझे यह कहने का

क्या अधिकार है कि समाज को कहीं अलग होकर एकान्त वास करना चाहिये। आप लोगों में कितने ऐसे हैं जिन्होंने अपने मन में कभी यह भी सोचा है कि हम इस संस्था के अन्तर्गत क्यों रहे। यदि यह संस्था सामाजिक है धार्मिक अथवा नैतिक नहीं तब तो यह संसार में कुछ कर सकती है। यदि आप लोग जिज्ञासु हैं ज्ञाता नहीं यदि आप उपदेश देते हैं उपाधियां नहीं यदि अपना कार्यक्षेत्र आप सब लोगों के लिए खुला रखते हैं केवल मेरे अथवा अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के लिये नहीं यदि आप लोगों में न कोई नेता बनना चाहता हो न कोई अनुयायी रहे तो कुछ लाभ हो सकता है परन्तु मेरा अनुमान है कि आप लोग अनुयायी हैं इस कारण आप लोगों ने गुरु मान रखे हैं ऐसा समाज चाहे यह अथवा कोई और हो निरर्थक होगा। आप लोगों में से कुछ गुरु हैं कुछ शिष्य हैं। सिद्धान्त की अवस्था में न कोई गुरु है न कोई शिष्य है न विद्वान है न मूर्ख हैं। यह भेद कल्पित है क्योंकि आप विभाग की कल्पना करना चाहते हैं। सब लोग महामहोपाध्याय नहीं बन सकते इस कारण इस समाज में मान अथवा अन्यत्र महत्व अथवा स्वर्ग की प्राप्ति चाहते हैं। यदि आप शुद्ध हृदय से इन बातों पर विचार करते तो क्या आप लोग संसार का अपूर्व उपकार नहीं कर सकते थे। तब तो आप लोग इसके सिद्धान्तों के गुणों पर विचार करते केवल नेताओं की कल्पनाओं और भावनाओं का ध्यान न रखते। फिर आप सिद्धान्त की मीमांसा करते उसके यथार्थ गुण समझते और व्यवहार में उसका

प्रयोग करते केवल मान अथवा पुरस्कार के लालच में न पड़े रहते क्योंकि इससे संकीर्णता हठवाद भेद क्रूरता तथा बुद्धि का विनाश होता है ॥

प्रश्न—इस समाज के आरम्भ के दिनों में मेंडम ब्लैवेट्स्की आदि ने ब्रह्मज्ञान का जो उपदेश दिया था उसके विषय में आप का क्या मत है ? आप की राय में हमने उन्नति की है अथवा हम भ्रम में पड़ गये हैं ?

उत्तर—मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता क्योंकि मैं नहीं जानता कि मैडम ब्लैवेटस्की ने क्या शिक्षा दी थी। मैं क्यों जानूं ? आप लोगों को किसी के उपदेश से क्या प्रयोजन ? सत्य एक है इस कारण एक ही मार्ग है जो सत्य से विचलित नहीं होता। सत्य को जानने का एक ही उपाय है क्योंकि कार्य से कारण भिन्न नहीं हो सकता ॥

जिन लोगों ने मैडम ब्लैवेटस्की का मत ब्रह्मविद्या के अर्वाचीन सिद्धान्त अथवा उसका जो कुछ नाम हो पढ़ा है वे लोग प्रत्यक्ष जीवन को छोड़ कर शास्त्र का अध्ययन क्यों करना चाहते हैं ? आप लोग गुरू क्यों बनाते हैं और फिर पूछते हैं कि किसका उपदेश अच्छा है ? क्या आप लोग यह नहीं समझते हैं ? मैं मर्मभेदी बात नहीं कह रहा हूँ। आप लोग ईसाई हैं। देखिये आपके धर्म में कितना सत्य और कितना पाखंड है। तब आपको सत्य का ज्ञान स्वयमेव हो जावेगा। जब आप देखेंगे कि इस स्वार्थी और लोलुप संसार के व्यवहार में कितना दंभ और कितना

सत्य है तब आप सत्य को पहिचान लेंगे। आप दर्शन क्यों चाहते हैं? क्योंकि व्यवहार दूषित है और दर्शन के द्वारा आप व्यवहार के दोषों से मुक्त होना चाहते हैं! जीवन इतना निःसार नीरस विषादमय और कुत्सित प्रतीत होता है कि आप संसार में कुछ उत्साह कुछ आशा तथा रमणीयता का संचार करना चाहते हैं परन्तु यदि आप संसार में यथार्थ जीवन व्यतीत करें तो आप उसे किसी दर्शन मीमांसा उपदेश अथवा गुरू से अधिक महत्व का पावेंगे ॥

हम लोगों के जीवन का रस ही नष्ट हो गया है न दुःखी को देखकर हमारे हृदयमें किसी करुणा के भाव का संचार होता है न किसी दुष्ट को देख कर। जब आपको कष्ट होता है तभी आपको भान होता है। इस प्रकार क्रमशः विवेकके द्वारा अपने सब भावों, वेदनाओं तथा सूक्ष्म अनुभवों को छिन्न कर दिया है यहाँ तक कि हमारे स्वभाव में गंभीरता का लेश भी नहीं रहा और उस कमी को पूरा करने के लिये अपना अनुभव पूर्ण करने के लिए हम पुस्तकें पढ़ते हैं। मैं सब प्रकार की पुस्तकें पढ़ता हूँ परन्तु कभी दर्शन शास्त्र नहीं पढ़ता। जब आप लोग कहते हैं कि मैं दर्शन शास्त्र का अध्ययन करता हूँ यह सीखता हूँ वह पढ़ता हूँ तो मेरे चित्त को ग्लानि होती है क्योंकि इन बातों से संसार के दैनिक जीवन में न कुछ लाभ है न इनसे कुछ बोध होता है। मुझे निश्चय है कि यथार्थ जीवन ही सुख बोध तथा नित्य वस्तु की प्राप्ति का साधन है। उसी के द्वारा आपको वह ज्ञान प्राप्त होगा

जो किसी प्रकार के वर्णन चित्र विद्या अथवा गुरू के द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता ॥

प्रश्न—विकास के सम्बन्ध में आध्यात्मिक उन्नति के लिये ब्रह्मविद्या की शिक्षाओं का कोई प्रयोजन है अथवा नहीं ?

उत्तर—आप लोग विकास किसे कहते हैं ? जहां तक मैं समझता हूँ निरर्थक से सार्थक बनना ही विकास है। अज्ञान से ज्ञान की दशा में आना। ठीक है न ? कोई सिर नहीं डुलाता। अच्छा ! विकास क्या है ? अनुभव बोध और ज्ञान का संचय करना। निरर्थक वस्तु छोड़ कर सार्थक को खोजना, परन्तु सार वस्तु मिलते ही असार बन जाती है। ठीक है न ? क्या आप लोग बहुत थक गए ? क्या बहुत देर होगई। कृपा कर विचार कीजिये। आज यह मेरा दूसरा व्याख्यान है परन्तु यदि आप लोग मेरे साथ विचार न करेंगे तो मुझे बोलना कठिन होगा मुझे दीवारों से टक्करें मारना पड़ेंगी।

आज आप कुछ सीखना उचित समझते हैं उसे खोजते हैं और जान लेते हैं कल ही वह बात निरर्थक हो जाती है और आप कहते हैं कि मैंने सीख लिया। जिस बातको कल आप आवश्यक समझते थे आज वही निष्प्रयोजन सिद्ध होती है इसीप्रकार आप चलते जाते हैं और इस प्रक्रिया को उन्नति अथवा विकास कहते हैं। आप संचय करते जाते हैं सत् और असत् का विवेचन करते जाते हैं परन्तु न कहीं सत् है न असत् है। आज जिसे आप सत् कहते हैं कल वही

असत् हो जाता है क्योंकि उसे छोड़ कर आप अन्य पदार्थ की खोज में लग जाते हैं।

आज मैं दूसरी प्रकार से कहता हूँ। आपको कोई पदार्थ रोचक जान पड़ता है उसे पाने की इच्छा करते हैं और उसे पा लेते हैं फिर आपका मन भर जाता है और फिर आप दूसरी वस्तु की बांछा करने लगते हैं। वह चाहे कुछ बासना हो इच्छा हो उसे आप पूरा करते हैं। अन्त में आप ईश्वर सत्य सुख की खोज करने लगते हैं। जो मनुष्य सुख ईश्वर अथवा सत्य की प्राप्ति चाहता है उसे आप लोग ब्रह्मज्ञानी कहते हैं और जो मनुष्य टोपी रूमाल आदि चाहता है उसे आप संसारी विषयी कहते हैं। टोपी असत् है और ईश्वर अथवा सत्य सत् है। परन्तु हमने किया क्या ? केवल अपनी वासनाओं का विषय बदल दिया। हमने सोचा कि अब टोपियां गाड़ियां घर पर्याप्त मिल चुके अब कुछ और चाहिये। आप उसकी खोज करते हैं प्राप्त करते हैं फिर कुछ और चाहते हैं इसी प्रकार आप चलते जाते हैं और अंत में ईश्वर को खोजने लगते हैं और समझते हैं कि अब हमारी खोज का अंत हो गया। हम केवल अपनी वासनाओं के साथ क्रीड़ा करते रहे हैं और वासनाओं की इस निरन्तर पूर्ति के प्रयास को आप लोग विकास कहते हैं। यही बात है या नहीं ?

श्रोता—एक हीसमय में एक मनुष्य एक वस्तु चाहता है दूसरा मनुष्य दूसरी वस्तु को।

कृष्णमूर्ति--परन्तु वासना समान है। चाहे टोपी की इच्छा हो अथवा ईश्वर की प्राप्ति की परन्तु कामना एक सी है। इसका मूल तृष्णा है। एक पदार्थ मिलने पर दूसरे की वांछा होती है जब तक सम्पूर्ण वासनायें तृप्त न हो जावें, परन्तु जब हमें प्रत्येक बांछित पदार्थ का यथार्थ बोध हो जावे तो हम समझ जावेंगे कि न वह सत् है न असत् है। तब हम वस्तु का स्वरूप जान जावेंगे विकास का अर्थ कुछ और ही हो जावेगा फिर हमारे लिये विकास निरन्तर संचय वैभव अथवा सिद्धि का साधन नहीं रहेगा॥

श्रोता—क्या हमें वासनाओं का नाश करना पड़ेगा?

कृष्णमूर्ति—कदापि नहीं। यदि वासना नष्ट होगई तो फिर रह क्या गया? जीवन का अन्त होगया। वासना का नाश कैसे हो सकता है। उसका प्रवाह रुक नहीं सकता। वासना का नाश क्यों करना चाहते हैं? क्योंकि इससे क्लेश होता है। जब तक आपको इससे सुख मिलता रहता है तब तक आप इसमें बिना पूंछे ही लिप्त रहते हैं परन्तु जब कष्ट होने लगता है तभी आप कहने लगते हैं इस वासना को नष्ट करो। कष्ट क्यों होता है? बोध के बिना। यदि बोध प्राप्त हो जावे तो कष्ट न हो॥

श्रोता—क्या आप इसका कोई दृष्टान्त दे सकते हैं कि बोध से कष्ट का नाश होता है? कृष्णमूर्ति—क्या आप स्वयं विचार नहीं सकते? मैं पीछे बतलाऊंगा। अब मैं दूसरे प्रकार से कहता हूँ। हम लोग वासनाओं का नाश संयम निरोध वश में करना जानते

हैं। मेरे मत में यह विचार शैली कृत्रिम है कल्पित है। आप कोट टोपी अथवा कुछ अन्य पदार्थ चाहते हैं—मैं नहीं जानता क्या—और आप वासनाओं को बढ़ाते जाते हैं क्योंकि इष्ट पदार्थों की प्राप्ति से तृप्ति नहीं होती। यही बात है न? इस कारण वासना बनी रहती है परन्तु वस्तु बदल जाती है। अब एक पदार्थ छोड़कर दूसरे की वांछा आप क्यों करते हैं? क्योंकि आपको वासना के हेतु का बोध नहीं आप पदार्थ की वांछा का कारण नहीं जानते। आपको इष्ट पदार्थ के संयोग से सुख और वियोग से दुःख का अनुभव होता है परन्तु आप इसका कारण नहीं जानते। कुछ स्पष्ट हुआ? इसके लिये विचार अत्यन्त आवश्यक है॥

प्रश्न—आपने "गुरुदेव चरणेषु" नाम की पुस्तक में जो लिखा था उसे अब भी मानते हैं?

उत्तर—ठीक है। इस प्रश्न का क्या अर्थ हुआ? इस शंका का भाव क्या है? क्या मैं गुरुदेव को अब भी मानता हूँ? यही है न? क्योंकि यदि मैं गुरुदेव को मानूंगा तो उनकी शिक्षा को भी मानूंगा इत्यादि। अब विचारिये। इस बात पर स्पष्ट रीति से विचार करना है केवल आप के गुरुदेव पर आक्षेप नहीं करना है जिनका समर्थन आपको करना पड़े॥

आप गुरु क्यों ढूंढ़ते हैं? आप कहते हैं हमें पथ प्रदर्शक चाहिये। यही बात वेदान्ती कहते हैं। यही रोमन कैथोलिक ईसाई कहते हैं। संसार में सब लोग यही कहते हैं। यह बात साधारण

है। केवल आप लोगों पर ही लागू नहीं। आप कहां के पथका प्रदर्शक चाहते हैं ? इसके अनन्तर यही प्रश्न होगा यह तो स्पष्ट हो है। आप कहेंगे कि मैं सुख सत्य मुक्ति निर्वाण स्वर्ग के पथ का प्रदर्शक चाहता हूँ जो मुझे उसकी प्राप्ति का मार्ग बता दे। (मैं कोई चतुर तार्किक नहीं हूँ जो आपको परास्त करना चाहता हो, मैं तो आपको विचार करने में सहायता देना चाहता हूँ किसी मत में लाना नहीं चाहता)। अब यदि आप सत्य की खोज करना चाहते हैं तो पथ प्रदर्शक का कोई प्रयोजन नहीं, आप किसी को पथ प्रदर्शक मान लें। आप कैसे जानेंगे कि वह सत्य का मार्ग बतावेगा ? सड़क पर झाड़ू देने वाला बता दे आपकी बहिन भाई पड़ोसी अथवा कोई और। आप पथप्रदर्शकों पर विशेष ध्यान क्यों देते हैं ? सिर न हिलाइये। मैं सब जानता हूँ। आप कहते हैं कि यह ठीक है फिर भी कोई चेला बनना चाहता है कोई सिद्धियां प्राप्त करना चाहता है कोई भूमिकाओं पर आरूढ़ होना चाहता है। इस प्रकार आप सत्य की प्रत्युत पथ प्रदर्शक की खोज करते हैं। ठीक है ? नहीं ? तो फिर कहिये क्या ?

श्रोता—आपने "गुरुदेव चरणेषु" में लिखा है कि हम को वासना का नाश करना चाहिये और अब आप कहते हैं कि हम लोगों ने—

कृष्णमूर्ति—क्षण भर ठहरिये। हां विरोध है। ऐसे विरोध अनेक दिखाई पड़ेंगे। एक देवी ने "नहीं" कहा था। उसने सिर हिलाया था। । मैं जानना चाहता हूँ॥

शंका—मैं भूल गया कि गुरुदेव के विषय में आपने क्या पूछा था। गुरुदेव के लिये मेरे व्यक्तिगत भाव वैसे नहीं हैं। मैं तो यह समझता हूँ कि जैसे आप मुझे बोध कराने का प्रयत्न कर रहे हैं उसी प्रकार गुरुदेव भी मुझे बोध प्राप्त करने में सहायता देंगे॥

कृष्णमूर्ति—इसका अर्थ यह हुआ कि गुरुदेव आप के पथ प्रदर्शक हैं। इस बात को आप अस्वीकार नहीं कर सकते। आप यह नहीं कह सकते कि मुझे इस बात की कोई चिन्ता नहीं कि मुझे मार्ग कौन दिखावेगा॥

शंका—मैं पथ प्रदर्शक को प्रधानता नहीं देता। विशेष कर गुरू को।

कृष्णमूर्ति—क्या आप गुरु को नहीं मानते ?

शंका—इसी लिये तो हम आप का उपदेश सुनने आये हैं।

कृष्णमूर्ति—कृपा कर मेरी बात को समझिये। यह न कहिये कि मुझे गुरु पथ प्रदर्शक आदि नहीं चाहिये। विचार कीजिये। यह न कहिए कि इन बातों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। यदि आप मेरी बातों पर विचार करें तो आप इससे बाहर न होंगे क्योंकि हम लोग सब इसी मण्डल के अन्तर्गत हैं॥

जसे मैं आज सबेरे कह चुका हूँ यदि आप सत्य को खोजते हैं और आप को एक मार्ग दर्शक चाहिए जो सत्य को जानता हो तो आप को भी सत्य का ज्ञान होना चाहिए दोनों को सत्य का ज्ञान होना चाहिए। परन्तु यदि आप सत्य को पहचानते हों चाहे

थोड़ा सा भी बोध हो तब आप किसी से न पूछेंगे। तब आप को यह चिन्ता भी न रहेगी कि आप शिष्य हैं अथवा किस श्रेणी के जिज्ञासु हैं इत्यादि। आप को सत्य ही के ज्ञान की आकांक्षा रहेगी उपाधियों की नहीं। इसके लिये आप क्या कहते हैं!

श्रोता—मैं तो यही कहूँगा कि आकांक्षा उपाधियों की नहीं बोध की ही रहेगी।

कृष्णमूर्ति—तब आप गुरुपूजा का मण्डन नहीं कर रहे हैं। मैं खण्डन नहीं करना चाहता। इसी भाव से हम लोग परस्पर विचार करें। जब शिष्य बन गए अन्य लोगों की अपेक्षा आप को विशेष अधिकार प्राप्त हो गए विशेष गुण युक्त हो गए तो आप को बोध कैसे प्राप्त हो सकता है?

श्रोता—मैं तो नहीं समझता कि मुझे कोई विशेष अधिकार मिला है जिन गुणों का मैंने अभ्यास किया उन्हीं का विकास हुआ किसी ने मुझे कोई उपाधि प्रदान नहीं की।

कृष्णमूर्ति—मुझे खेद है कि मेरा अभिप्राय स्पष्ट प्रगट नहीं हुआ। ठीक है। जब आप किसी गुरु के विशिष्ट शिष्य हो गए कुछ विशेषता महत्व प्राप्त हुआ या नहीं। आप कहेंगें नहीं इस से मुझे सत्य का बोध होगा सत्य के ज्ञान के लिये यह आवश्यकता है। क्या ऐसा नहीं है, इस का ण यह क्रिया केवल अहंकार का उद्गम और विस्तार मात्र है। बोध के लिये अहंभाव का क्षय होना चाहिये विस्तार नहीं ऐसा ही हैं न? कुछ समझने के लिये बुद्धि

निर्मल होना चाहिये। उसे मेरे मार्ग और तुम्हारे मार्ग, मेरा यह और तुम्हारे वह का ज्ञान नहीं होना चाहिये। जिस प्रक्रिया से ममत्व का विस्तार हो वह ज्ञान का बाधक होगी। क्यों नहीं?

श्रोता—हमको यह सिखाया गया है कि गुरुदेव हैं॥

कृष्ण मूर्ति—इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता। यदि आप कहें कि यह प्रमाण है हम से यह कहा गया है तो फिर मुझे कुछ कहना नहीं परंतु इससे क्या आप सब लोगों के चित्त को सन्तोष हो जाता है?

श्रोता—नहीं!

कृष्ण मूर्ति—गुरु शिष्य दीक्षा आदि के सम्बन्ध में आप लोगों ने जो कुछ सीखा है क्षण भर के लिये सब भूल जाइये। यदि आपका हृदय शुद्ध है तो आप समझ जावेंगे। इसका भेद यही है कि प्रत्येक मनुष्य महत्त्व चाहता है और यह महत्त्व की लालसा ही लोगों को भ्रम और वंचना के जाल में फँसा रही है॥

यह अहंभाव क्या है? आपको इसका ज्ञान कब होता है? (मुझे संक्षेप में कहना है क्योंकि विश्राम का समय आ गया) यह भाव क्या है? आपको अहंकार की भावना कब होती है? जब यह द्वन्द्व उपस्थित होता है जब कोई बाधा आ पड़ती है प्रवाह में कोई विघ्न पड़ता है। बाधाओं का विघ्नों को दूर करो तो अहंभाव नहीं रहता। तभी सच्चा जीवन है। जब कष्ट का अनुभव होता है तभी शरीर का ज्ञान होता है। इसी प्रकार जब मन अथवा बुद्धि में कोई विकार उत्पन्न होता है तभी अहंभाव का बोध होता है।

इस भावना को हमने दृढ़ कर लिया है मन में अहंभाव को सिद्ध कर लिया है और इस भावना को सत्य मानकर हम अपने अहंभाव का विकास करके अपनी सत्ता का अनुभव करना चाहते हैं उपासना संस्कारों आदि के द्वारा संवित का अधिक विस्तार करना चाहते हैं जिससे सिद्ध होता है कि आप लोग मिथ्या भ्रम में पड़ गये हैं यह अहंभाव सत्य नहीं है। इसी भ्रम के आधार पर चैतन्य के विकास तथा संस्कारों की कल्पनायें प्रतिष्ठित हैं। इसी कारण आप समझते हैं कि चैतन्य के विकास के लिये सत्य के अवगम के लिये गुरु की आवश्यकता है। अथवा आप कहेंगे कि संसार को विधान चाहिये। अनेक महात्मा संसार में उपस्थित हैं इस कारण लोक सेवा के लिये मुझे उनके आदेश का पालन करना चाहिये। इस प्रकार अपने और उनके-मूर्खों और विद्वानों के मध्य में आप सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इस प्रकार आप धोखे का भाजन बन जाते हैं। मैं जानता हूँ आप अविश्वास की हँसी हँसेंगे परंतु इससे मेरी कोई हानि नहीं। मैं न आपको मनाना चाहता हूँ, न आपकी बात मानूंगा। यदि आप विचार करेंगे तो सब भेद प्रगट हो जावेगा॥

इस प्रकार आप एक विधान रचते हैं जिसका भेद कुछ ही लोग जानते हैं और आप लोग केवल आज्ञा पालन के लिये भृत्य बन जाते हैं। जैसे यदि महात्मा लोग कहें कि युद्ध उचित है। मैं यह नहीं कहता कि उन्होंने ऐसा कहा है। आप लोग जानते हैं कि गत युद्ध में प्रत्येक मनुष्य यही कहता था कि ईश्वर हमारे पक्ष

में है और हम सब इस बात पर उछलते थे। अब आप यदि व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र होकर विचार करेंगे तो आप समझ जावेंगे कि युद्ध कितना हानिकारक है। और यदि सचमुच विचार करते तो युद्ध में भाग न लेते। परन्तु आप कहते हैं मैं नहीं जानता विधान यह है कि युद्ध अवश्य होना चाहिये इस घोर कर्म का फल अच्छा ही होगा इस कारण मुझे इसमें सम्मिलित होना है। अर्थात् आप विचार नहीं करते। आप लोग केवल शासन मानते हैं और तापों के सन्मुख जा पड़ते हैं। ये सब बातें तो आध्यात्मिक नहीं हैं। इस कारण गुरु को मानना अथवा न मानना मेरे लिये कोई महत्त्व की बात नहीं। गुरु को मानने अथवा न मानने से अध्यात्मविद्या से कोई सम्बन्ध नहीं। जो माध्यम प्रेतों के संवाद सुनाते हैं और जो लोग महात्माओं के संवादों का प्रचार करते हैं उनमें कितना अंतर है?

श्रोता—तो क्या हम लोग कुछ न मानें?

कृष्णमूर्ति—कृपाकर क्षण भर ठहरिये। आप जानते हैं कि मैं यही बात कह रहा हूँ। आप लोग मानना क्यों चाहते हैं? (हँसी) कृपाकर हँसिये नहीं क्योंकि हम सब लोगों की स्थिति वही है। हम सब लोगों को सहारे के लिये आधार मानना पड़ता है। जितने आधार हम अधिक मानते हैं उतनी ही हमारी आध्यात्मिक सत्ता शक्ति हीन होती जाती है। मुझे खेद है कि मैं इसका विशद वर्णन नहीं कर सकता। साढ़े आठ बज चुके हैं परन्तु मैं इतना कहना चाहता हूँ। अपने संकल्पों अथवा भावनाओं को

दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करने से बोध अथवा ज्ञान नहीं प्राप्त होता। बोध तभी उत्पन्न होता है जब आपकी वृत्ति स्थगित न हो जब आप किसी मत में बँधे न हों। तब आप देखेंगे कि महात्माओं के होने अथवा न होने से कोई हानि लाभ नहीं इसी प्रकार आप की समिति संसार में रहे अथवा न रहे। इन बातों का कोई विशेष महत्व नहीं। तभी आप लोग संसार में नये युग नई सभ्यता की स्थापना कर सकेंगे॥

आप लोग जानते हैं यह बड़ी अद्भुत बात है। डाक्टर बेसैण्ट ने सब सदस्यों से कह दिया था और मैं बहुधा सुना करता था कि हम लोग जगद्गुरु के लिये क्षेत्र तैयार कर रहे हैं। सचेत रहो। संभव है कि उनके विचार आप लोगों की भावनाओं के विपरीत हों और वे भिन्न मत का प्रचार करें। कुछ लोग तो बीस वर्ष से भी अधिक दिनों से प्रतीक्षा कर रहे हैं और यह निष्प्रयोजन सिद्ध हुआ कि मैं जगद्गुरु हूँ अथवा नहीं। यह बात आप लोगों को कोई नहीं बतला सकता क्योंकि मेरे सिवाय और कोई इस भेद को नहीं जानता और तब भी मैं कहता हूँ कि यह शंका निरर्थक है। मैंने इसका कभी प्रतिवाद नहीं किया। मैं कहता हूँ इस झगड़े को छोड़ो। इन बातों में कुछ सार नहीं। आप लोग बीस वर्षों से भी अधिक काल से तैयारी कर रहे हैं परन्तु आप लोगों में से कितने सचेत हैं। बहुत थोड़े लोगों ने यह कहा है कि "हम आप के कथन पर विचार करेंगे। हम इस विषय की मीमांसा करेंगे। आप चाहे जो कुछ कहें हम लोग आप की बात की

विवेचना करेंगे कि इसमें कितना सत्य है कितना असत्य है।" बीस वर्ष पीछे भी आप लोगों की स्थिति वही है जो पूर्व काल में थी। आप लोगों के अनन्त मत हैं अगणित सिद्धान्त हैं और संचित ज्ञान है इस कारण आप लोग मेरे कथन पर विचार करने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं। इतना समय व्यर्थ नष्ट हुआ, बड़े खेद की बात है कि बीस वर्ष से अधिक समय व्यर्थ चला गया और आप लोग जहां थे वहीं बने रहे केवल कुछ मत कुछ सिद्धान्त कुछ नई परिस्थिति का निर्माण और हो गया। मैं कहता हूँ कि इस प्रकार के अनुराग से सत्य मुक्ति निर्वाण स्वर्ग अथवा और जो कुछ आप कहना चाहें प्राप्त नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप सब लोग विरक्त हो जावें जिसका अर्थ :यही होगा कि आप लोगों की वृत्ति क्षीण हो गई परन्तु निष्पक्ष हो कर शुद्ध हृदय से सरलता पूर्वक विचार करें कि आप लोगों ने जिन प्रत्ययों का इतने प्रेम से संग्रह किया है उनमें कुछ सार भी है कि नहीं उनसे आपको क्या लाभ है। उनके गुणों पर विचार करने की चेष्टा से ही आसक्ति का क्षय हो जावेगा। जब इस दृष्टि से आप लोग विचार करेंगे तो आपको अकथनीय अनुभव प्राप्त होगा। तब आपको अक्षय अविनाशी सत्य का बोध होगा। फिर आपको गुरू और शिष्य की आवश्यकता न रहेगी। जब संसार से गुरु और शिष्य की परम्परा नष्ट हो जावेगी तो संसार आनन्दमय हो जावेगा॥

टौनहाल में दूसरा व्याख्यान १—४—१९३४

मित्रगण !

आप लोग किसी पदार्थ की खोज में यहां आये हुए हैं। अधिकांश लोग यहां इसी आशा से आये हैं कि हमें इस सभा में सम्मिलित होने से कुछ लाभ होगा क्योंकि आप ऐसी वस्तु ढूंढ़ते हैं जिसका ज्ञान आपको नहीं है परन्तु जिसके मिलने की आशा है। आप लोगों के यहां आने का कारण यह है कि आप लोगों को सुख प्राप्त करने की इच्छा है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी प्रकार के क्लेश से पीड़ित है। हमारे मन और हृदय में एक प्रकार की वासना निरन्तर लगी रहती है जिसके कारण हमारे चित्त को सन्तोष तृप्ति समाधान नहीं होता। हमारे अगणित कष्टों के लिये नाना प्रकार की व्याख्यायें की जाती हैं और इस प्रकार खोज के प्रयास के फल के रूप में कुछ पाने की आशा से आप लोग यहां आते हैं। आप लोगों को आशा है कि मेरा व्याख्यान सुनने से आप लोग अपने कष्टों का निदान रूप शंकाओं की निवृत्ति का कोई उपाय जान जावेंगे॥

जब आप लोगों पर कोई विपत्ति आ पड़ती है तो आप लोग क्या चाहते हैं? उसके निवारण का उपाय जानना। जब आपके मन में कोई शंका उत्पन्न होती है तो आप लोग उसका समाधान चाहते हैं। जब आपको पीड़ा होती है तो आप लोग उसको शान्त करने की औषधि चाहते हैं। इसी प्रकार हम निवृत्ति पर निवृत्ति चाहते हैं। हमको दुःख होता है और हम उस दुःख की निवृत्ति का उपाय

जानना चाहते हैं इसी प्रकार एक शिक्षा एक अनुभव एक उपाय एक व्याख्या एक शाखा एक मत के अनन्तर हम लोग दूसरे की खोज में रहते एक सम्प्रदाय छोड़ कर दूसरे में चले जाते हैं एक पिंजड़े से दूसरे पिंजड़े में और अपने कष्ट का कारण जानने के लिये शलाकाओं से व्यर्थ ही उलझते हैं तथा हमारा चित्त और हृदय उपाय विवरण जानने के लिये सदा व्याकुल रहते हैं। ऐसे आप विवरण कभी जान ही न सकेंगे क्योंकि जब आप को क्लेश सताते हैं तब क्या होता है ? आप पीड़ा की निवृत्ति दुःख की शान्ति चाहते हैं और जो औषधि आपको दी जाती है उसे विना समझे बूझे आप ग्रहण कर लेते हैं आपके स्वीकार करने का कारण यह है कि आपके मन में आशा का संचार हो जाता है और उस आशा से बुद्धि आवृत हो जाती है इस कारण आप औषधि की समीक्षा करने में असमर्थ हो जाते हैं। यदि आप सोचेंगे तो यह स्पष्ट हो जावेगा। आप वैद्य के पास जाते हैं वह एक औषधि देता है। आप कभी यह नहीं पूछते कि इस में क्या है ? आपको केवल पीड़ा के शान्त होने की ही चिन्ता रहती है॥

यदि आप जिज्ञासु हैं तो आज भी आप के चित्त की वृत्ति उसी प्रकार की है। यदि आप केवल औत्सुक्य के कारण यहाँ आये हैं तो मुझे कुछ अधिक कहना नहीं है। परन्तु यदि आप कुछ जानना कोई युक्ति चाहते हैं तो यह आशा व्यर्थ सिद्ध होगी क्योंकि मैं कोई युक्ति व्याख्या नहीं बताना चाहता परन्तु यदि हम लोग मिल कर सोचें विचार करें तो हम को अपने कष्ट का कारण विदित हो जावेगा॥

क्लेश का हेतु जाननें के लिये आप उपाय न सोचें क्लेश के निदान की ही जिज्ञासा करें। लक्षण शान्त करने के लिये बाह्य उपचार भी हो सकता है परन्तु इस से आप रोग का यथार्थ मूल प्रधान हेतु न जान सकेंगे। आप रोग का कारण तभी जान सकते हैं जब पीड़ा को शान्त करने की तीव्र इच्छा आप की जिज्ञासा में बाधा न डाले। यदि आपके किसी प्रिय बन्धु का वियोग हो गया हो तो आप को महान कष्ट होगा। आप को एक युक्ति बताई जाती है कि देह के नाश से जीव की हानि नहीं होती क्योंकि आत्मा अमर है इत्यादि। कष्ट को शान्ति के लिये आप यह युक्ति मान लेते हैं परन्तु इससे दुःख का क्षय नहीं होता। विरह की वेदना शून्यता का भान बना ही है केवल व्याख्या युक्ति बाह्य लेप के द्वारा शोक को ढांक दिया गया है। यदि आप इस कष्ट का यथार्थ कारण जानने की चेष्टा करें तो जो युक्ति आप को बताई गई है उसकी आप भली भांति समीक्षा करेंगे उसका तत्त्व जानने का प्रयत्न करेंगे चाहे वह परलोक की बात हो चाहे पुनर्जन्म का सिद्धान्त हो। चित्त की ऐसी दशा में यदि कष्ट हो तो बुद्धि तीक्ष्ण हो जाती है और ध्यान बंध जाता है। चित्त की एकाग्रता ही कष्ट के अनुभव का हेतु है। ठीक है न ? यदि आप स्त्री भाई बन्धु के साथ रहते हैं और स्त्री भाई अथवा उस बन्धु की मृत्यु हो जावे तो आप को वियोग का तीव्र भान होता है और उसके अनुभव से चित्त में शंका उत्पन्न होती है। जब चित्त में तीव्र वेदना पूर्ण अनुभव हो तभी कष्ट के निदान की जिज्ञासा का अवसर है॥

अब मैं समझता हूँ कि वेदना का हेतु जानने के लिये चित्त और हृदय में ऐसी उत्कट अभिलाषा होना चाहिये जिससे बोध ज्ञान प्राप्त हो। उस दशा में आपको बोध होग कि हमारे चित्त और हृदय परिस्थिति के दास बन गये हैं। प्रायः सभी लोगों के लिये चित्त संसार के अनुभव से भिन्न नहीं है, चित्त और हृदय की दशा दृश्य के अनुसार रहती है यदि स्थिति अनुकूल हो। जब तक मन दृश्य का दास बना रहेगा तब तक क्लेश क्षीण न होंगे क्योंकि मनुष्य और समाज में झगड़ा चलता रहेगा। मनुष्य दृश्य के बंधन से तभी मुक्त होगा जब दृश्य की मीमांसा करके वह दृश्य के बंधन से छूट जावेगा। समाज ने धर्मों ने आप के सन्मुख जो दृश्य उपस्थित कर दिया है उसकी यथार्थ सत्ता का ज्ञान आपको जब हो जावेगा तभी आप संसार के बंधन से छूट सकेंगे और तभी आपकी बुद्धि निर्मल होगी॥

मनुष्य के दुःख का मूल कारण अविद्या है जो बोध का अभाव है। जब ज्ञान उत्पन्न होता है तो द्वन्द्व मिट जाता है क्योंकि फिर आप प्रमाणों प्रथाओं और मतों के बंधन में नहीं पड़ते। इस लिये आनन्द की प्राप्ति के लिये ज्ञान आवश्यक है और बोध की प्राप्ति के लिये चित्त दृश्य से मुक्त होना चाहिये। युगों की परंपरा से धर्म और समाज ने हमारे चित्त पर जो नाना प्रकार के संस्कार डाल दिये हैं उन्हीं से हमारे दृश्य का निर्माण हुआ है। लोगों ने जो दृश्य बना कर उपस्थित कर दिया है उससे आप तभी मुक्त हो सकते हैं जब आप उसके लक्षण गुण दोष और प्रमाण भली

भांति समझ लें। तभी अविद्या से जो क्लेश उत्पन्न होते हैं उनका मूल कारण आप की समझ में आ जावेगा परन्तु यह ज्ञान किसी आश्चर्यजनक घटना के द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता केवल ऐसे विचार के निरन्तर अभ्यास से प्राप्त होगा जिससे संसार की स्थिति के सत्य और असत्य भावों का बोध हो जावे ॥

मुझे कुछ प्रश्न दिये गये हैं और अब मैं उनके उत्तर देने का प्रयत्न करूंगा ॥

प्रश्न—क्या आप ईश्वर को मानते हैं अथवा नास्तिक हैं ?

उत्तर—मैं समझता हूँ आप सब लोग ईश्वर को मानते हैं। ऐसा होना ही चाहिये क्योंकि आप सब लोग ईसाई हैं कम से कम ईसाई कहलाते तो हैं इस कारण ईश्वर पर आपकी श्रद्धा अवश्य होनी चाहिये ॥

आप लोग ईश्वर को क्यों मानते हैं ? मैं अभी उत्तर देता हूँ इस कारण पहिले ही मुझे आप लोग नास्तिक अथवा आस्तिक न कहें। आप ईश्वर को क्यों मानते हैं ? विश्वास क्या है ? जो वस्तु प्रगट है जैसे धूप अथवा जो व्यक्ति आपके पास बैठा है उसको मानने की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु ईश्वर में आपकी श्रद्धा सत्य नहीं है। वह तो एक आशा है संकल्प है कल्पित भावना है जिससे सत्य का कोई सम्बन्ध नहीं, यदि आप श्रद्धा न रखें परन्तु जीवन में उसकी सत्ता का बोध हो जावे जैसे आप को यह धूप प्रत्यक्ष दिखाई देती है तो आपके जीवन का सम्पूर्ण चरित्र ही और ढंग का हो जावेगा। इस समय आपके दैनिक जीवन पर

आपके विश्वास का कोई प्रभाव नहीं है इस कारण मेरी दृष्टि में आप लोगों को ईश्वर को मानना और न मानना दोनों बातें निरर्थक हैं (ध्वनि) कृपा कर तालियां न बजाइये। मुझे अभी अनेक प्रश्नों के उत्तर देना है ॥

मेरी दृष्टि में ईश्वर की सत्ता पर आप लोगों का विश्वास होना अथवा न होना दोनों समान हैं क्योंकि दोनों कल्पित हैं। यदि आपको सत्य का ज्ञान होता जैसे आपको फूल का ज्ञान है यदि आप को सत्य का ऐसा अनुभव होता जैसा शुद्ध और दूषित वायु का है तो आप का सम्पूर्ण जीवन पूरा चरित्र व्यवहार भाव तथा विचार भिन्न प्रकार के होते। आप लोग नास्तिक बनें अथवा आस्तिक कहलावें आपके चरित्र से कुछ सिद्ध नहीं होता इस कारण ईश्वर की सत्ता में आप लोगों की आस्था अथवा अनास्था का कोई महत्व नहीं। यह तो केवल बाहरी भावना है जिसका आधार लौकिक व्यवहार और परिस्थिति है और भय प्रभाव अथवा अनुकरण के कारण उत्पन्न हुई है इस लिये जब आप पूछते हैं कि तुम ईश्वर को मानते हो अथवा नास्तिक हो तो मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता क्योंकि आप लोग सत्य की अपेक्षा श्रद्धा अधिक मानते हैं। मैं कहता हूँ कि एक विशाल अप्रमेय और अगाध सत्ता है जो चैतन्य विशिष्ट है परन्तु उसका वर्णन नहीं हो सकता। जिसने नमक को कभी चाखा नहीं वह लवण का स्वाद कैसे बता सकता है ? जिन लोगों ने कभी स्वाद का अनुभव नहीं किया जिन लोगों

को अपने जीवन में इस परम सत्ता का कभी बोध नहीं वे ही लोग पूछते हैं कि मैं मानता हूँ कि नहीं क्योंकि जो ज्ञान शुद्ध और सच्चे व्यवहार से प्राप्त हो सकता है उसके अनुभव की अपेक्षा उन लोगों की दृष्टि में विश्वास का महत्त्व अधिक है। सच्चा व्यवहार उन लोगों की रुचि के अनुकूल नहीं है इस कारण वे लोग समझते हैं कि ईश्वर को मानना मनुष्य मात्र के लिये आवश्यक है ॥

इस लिये मेरी दृष्टिमें आस्तिकता और नास्तिकता दोनों व्यर्थ हैं। यदि आप जानते हैं कि ईश्वर क्या है सत्य क्या है तो आप न आस्तिक बनेंगे न नास्तिक क्योंकि ज्ञान उत्पन्न होने पर विश्वास की आवश्यकता नहीं रहती। जिस मनुष्य को बोध नहीं प्राप्त हुआ वही आशा और कल्पना के चक्कर पड़ा रहता है और उसी को किसी विशेष मार्ग पर चलने के लिये और अपने मान की प्रतिष्ठा के लिये विश्वास तथा अविश्वास का आश्रय लेना पड़ता है ॥

अब उसी प्रश्न को आप यदि दूसरी दृष्टि से देखें तो आप को अपने हृदय में ही इस सत्ता का अनुभव होगा जो समस्त कल्पनाओं तथा वाग्जाल से परे है। परन्तु ईश्वर अथवा सत्य के ज्ञान के लिये बुद्धि की बड़ी आवश्यकता है जिसका स्वरूप विश्वास अथवा अविश्वास नहीं है परन्तु अविद्या से उत्पन्न क्लेशों का साक्षात्कार है। ईश्वर अथवा सत्य को जानने के लिये मैं कहता हूँ कि ऐसी सत्ता है जिसका मैंने अनुभव किया है-उस सत्ता के साक्षात्कार के लिये अनुभव के लिये चित्त उन सब बाधाओं से

मुक्त होना चाहिये जो दुःख के भय और आशंका से बचने के लिये अनेक युगों से संचित की जा रही हैं, केवल अपने को मुक्त मानने से आप बंधन से नहीं छूट सकते। इन बाधाओं को तोड़ने के लिये विद्या ही नहीं पूर्ण बोध होना चाहिए। मेरी दृष्टि में बोध तभी प्राप्त हो सकता है जब मन और हृदय में पूर्ण सामंजस्य हो और तब आप किसी से भी बिना पूछे यह जान जावेंगे कि वह परम सत्ता क्या है॥

अब संसार में क्या हो रहा है? ईसाइयों का ईश्वर अलग है हिन्दुओं का ईश्वर पृथक् मुसल्मानों का खुदा भिन्न है और प्रत्येक सम्प्रदाय का मत भिन्न है और संसार में ये मत रोगों की तरह लोगों में भेदभाव बढ़ाते हुये फैलते जा रहे हैं। कुछ लोगों ने इन मतों को अपने स्वार्थ का साधन बना लिया है। आप एक मत के अनन्तर दूसरे का आश्रय लेते हैं और प्रत्येक का रसास्वाद ग्रहण करते हैं क्योंकि आपने विवेक को त्याग दिया क्योंकि आप दुःखसे पीड़ित हैं और अपना उद्धार चाहते हैं और ईसाई हिन्दू अथवा और कोई धर्म जो अपने मत का प्रचार करता है उसी को मानने लगते हैं। इसका फल क्या हो रहा है? धर्म मनुष्य जाति में भेद उत्पन्न कररहा है ईश्वरके नाम पर लोग अनेक मत फैला कर मानवजाति को अनेक सम्प्रदायों में विभक्त कर रहे हैं और फिर भी आप लोग मनुष्य जाति में वात्सल्य का नाम लेते हैं ईश्वर की एकता सिद्ध करते हैं और तत्काल ही जिस वस्तु को आप खोजते हैं उसी का निषेध करते हैं क्योंकि जिन मतों को आप लोग भेद भाव को दूर

करने का साधन समझ कर मानते हैं वे ही मनुष्य जाति के अंगों में उस भेद भाव को और भी दृढ़ कर देते हैं॥

ये सब बातें तो स्पष्ट ही हैं। यदि आप प्रोटैष्टैण्ट हैं तो आप लोग रोमन कैथोलिक ईसाइयों से घृणा करते हैं और यदि रोमन कैथोलिक हैं तो अन्य मतों के अनुयायियों से घृणा करते हैं। यह बात यहीं नहीं सर्वत्र है। भारतवर्ष में हिन्दुओं में मुसलमानों में सब जातियों में यही व्यवहार चल रहा है क्योंकि सब लोग मानव जाति की एकता जो सत्य है उसकी भावना की अपेक्षा विश्वास—उस दुष्ट भाव को अधिक महत्वशाली प्रधान समझते हैं। इस कारण जो लोग ईश्वर के परम भक्त हैं वे जीवन के आनन्द से वंचित रहते हैं। उन लोगों की श्रद्धा विश्वास में है अनुभव में नहीं इस कारण उनके मन और हृदय शुष्क हो गये हैं और शून्य रिक्त निःसार बन गये हैं॥

प्रश्न—क्या आप पुनर्जन्म को मानते हैं ?

उत्तर—पहिले मैं यह नहीं जानता कि पुनर्जन्म के सिद्धान्त को आप लोगों में से कितने व्यक्ति समझते हैं। मैं आप लोगों को संक्षेप से समझाता हूँ कि इसका क्या अर्थ है। इसका अर्थ यह है कि पूर्णता प्राप्त करने के लिये जीव को अनेक जन्म धारण करना पड़ते हैं जिनमें अनुभव और ज्ञान का संचय होता जाता है जब तक कि सत्य पराकाष्ठा का बोध नहीं हो जाता। संक्षेप में बिना विवेचन के यही पुनर्जन्म का सिद्धान्त है कि आप व्यक्तिरूप होकर जीव बन कर अहंभाव धारण करके जन्म जन्मान्तर में देह धारण करते रहते हैं जब तक पूर्ण न हो जावें॥

मैं इस प्रश्नका उत्तर नहीं देना चाहता कि मैं पुनर्जन्म को मानता हूँ कि नहीं क्योंकि मैं यह सिद्ध करना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म की आवश्यकता ही नहीं है। मेरी बात आप तत्क्षण ही न काट दें। जीव क्या है? जिस चैतन्य से अहंभाव उत्पन्न होता है उसका क्या लक्षण है? मैं बतलाता हूँ परन्तु कृपा कर विचार करें टालें नहीं। आप लोग यहां मेरा कथन समझने आये हैं अपनी अश्रद्धा से मुझमें और आप में भेद डालने के लिये नहीं। मैं क्या हूँ? चित्त में जिस चैतन्य का निरन्तर भान रहता है जिस चेतन बिन्दु को आप जीव कहते हैं उसका क्या लक्षण है? जब आपको "मैं" का ज्ञान होता है? जब आपको अपनी सत्ता का ज्ञान होता है? जब आपकी इच्छा का विघात होता है, जब आप के कार्य में बाधा पड़ती है, जब कोई प्रतिबंध उपस्थित होता है, अन्यथा आपको अपना भान नहीं होता। यही बात है न? आप को अपना भान तभी होता है जब द्वन्द्व उपस्थित होता है। हम प्रपंच के झगड़ों में सदा रहते हैं इस कारण हमें अपना भान होता रहता है। इसी को चेतना कहते हैं यही अहंकार है। इस दृश्य के भीतर अहंभाव केवल आपका रूप नाम संस्कार विज्ञान प्रवृत्ति गुण वासना और वेदनाओं का समुदाय मात्र है और आप समझते हैं कि यह समुदाय सदा बना रहेगा निरन्तर उन्नति करेगा और पूर्णता को प्राप्त होगा। द्वन्द्व कैसे पूर्ण होगा? चैतन्य का अंश पूर्ण कैसे होगा? वह बढ़ेगा विस्तार पावेगा परन्तु चाहे जितना बड़ा और विशाल हो पूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि उसका आधार

द्वन्द्व अविद्या क्लेश है इस लिये आप मन में सोचते हैं कि मृत्यु के पीछे भी मेरा व्यक्तिगत भाव नष्ट न होगा इस कारण जब तक मैं पूर्ण न हो जाऊं मुझे जन्म लेने पड़ेंगे ॥

अब यदि आप कहें कि जब तुमने अहंकार को नष्ट कर दिया तो जीवन का आधार ही क्या रह गया ? मुझे आशा है कि आप यह सब समझते जाते हैं, आप कहते हैं कि जब इस अहंकार का त्याग कर दिया तो फिर रह क्या गया ! जब आप असीम आनन्द में मग्न हो जाते हैं द्रष्टा बन जाते हैं तब क्या रह जाता है ? आनन्द, जब आप आनन्द में लीन हो जाते हैं प्रेम में मग्न हो जाते हैं तब अहंभाव नहीं रहता। केवल प्रेम आनन्द का उल्लास मात्र रह जाता है। मैं कहता हूं कि वही सत्य है शेष सब मिथ्या है ॥

अब यह देखना चाहिये कि द्वन्द्व कैसे उत्पन्न होता है बाधायें कौन उपस्थित करता है प्रपंच कैसे बना ? विचारिये कि यह सत्य है ? अथवा कल्पित है ? यदि यह सत्य है यदि यह संघर्ष जीवन का अंग है तो अहंकार भी सत्य होगा। अब मैं कहता हूँ कि यह संघर्ष मिथ्या है। जहां सच्चा प्रेम हो जहां मनुष्य के जीवन के आवश्यक पदार्थों की उचित योजनाओं का प्रबन्ध हो ऐसे मानव समाज में संघर्ष नहीं रह सकता। इस कारण यह विचारना चाहिये कि यह अहंभाव मिथ्या समाज मिथ्या व्यवहार की मिथ्या कल्पना है अथवा नित्य अविनाशी पदार्थ है। मैं तो इस उपहित चैतन्य को नित्य नहीं

मानता। यह तो मिथ्या दृश्य और कल्पना का परिणाम है। यदि आप जीवन में स्वतन्त्रता से कर्म करें और घृणित कर्म के करने को विवश न किये जावें परन्तु अपने धर्म पर आरूढ़ रहें और धर्म के द्वारा ही परमात्मा की उपासना करें तो आप की क्रिया संघर्ष रूप न होगी। जिस चित्रकार कवि लेखक अथवा विश्व-कर्मा को अपने कार्य की रुचि होगी उसे अपना जीवन भार स्वरूप प्रतीत न होगा॥

परन्तु आपका कार्य आपकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है। संसार और समाज की प्रेरणा से आपको व्यवहार चलाना पड़ता है चाहे आपकी इच्छा हो अथवा न हो इस कारण संघर्ष उत्पन्न होगया। फिर कुछ आचार्यों तथा शासकों ने ऐसे नियम बना दिये हैं कि यह कार्य उचित है यह अनुचित है यह धर्म है इत्यादि जिनको मानना ही पड़ता है। बिना समझे गुण दोष बिना जाने आपने यह आवरण धारण कर लिया है इस कारण संघर्ष उत्पन्न होगया। इस प्रकार क्रमशः आपका चित्त क्लिष्ट और विपरीत भावों से भर गयाहै और झगड़ों में ऐसा फँस गया है कि आपके मन में अहंकार के अतिरिक्त और कोई भावना ही नहीं रही। इस प्रकार मिथ्या आरम्भसे आप चले जिसकी कल्पना मिथ्या व्यवहार के कारण हुई और आपको इसका मिथ्या परिणाम मिला॥

इस कारण पुनर्जन्म का होना अथवा न होना मेरी दृष्टि में निरर्थक है। स्वरूप में स्थिति ही सार्थक है यही कैवल्य है। परन्तु यहस्थिति भविष्यमें नहीं होसकती स्वरूप में स्थिति कालापेक्षी नहीं

है ! स्थिति वर्तमान क्षण में ही होती है परन्तु हो क्या रहा है ? संघर्ष से द्वन्द्वों के निरन्तर आघात से अहंभाव और ममता की स्मृति की कल्पना की जा रही है और यही स्मृति चिरकाल से संचित है और अहंकारके रूपमें प्रगट हुई है । मैं कहता हूँ कि यह अहंकार मिथ्या दृश्यका मिथ्या परिणाम है इस कारण इसके कल्पित क्लेश तथा उनके उपाय भी कल्पित मिथ्या हैं । यदि आप लोग समाज धर्म तथा व्यवहार के कल्पित बंधनों को समझने लगें और उनको तोड़ने का प्रयत्न करें और इस प्रकार संघर्ष उत्पन्न करें तो अहंकार की यह क्षुद्र भावना गल जावेगी और आपकी स्थिति स्वरूप में हो जावेगी जिससे वर्त्तमान जीवन सार्थक हो जावेगा ॥

यही बात दूसरे शब्दों में यों कही जाती है कि अनेक वैज्ञानिकों का कथन है कि जीव नाम का उपहित चैतन्य मृत्यु के पीछे भी शेष रहता है । उन लोगों ने "सारद्रव्य" आदि वस्तुओं का आविष्कार किया है और कहते हैं कि मृत्यु होने पर भी जीवन बना रहता है । इस तर्क को तनिक ध्यानसे सुनना पड़ेगा जैसाकि पूर्व भाग आप लोगों ने सुना था अन्यथा यह समझ में नहीं आवेगा । अहंकार जीव उपहित विशिष्ट चैतन्य जीवन में प्रत्यक्ष सत्य है । जीवन में आप इसका अनुभव करते हैं यही है न ? यह प्रत्यक्ष तो है परन्तु यह सत्य नहीं । यह सत्य है कि आपको निज चैतन्य का भान होता है परन्तु जैसा मैं सिद्ध कर चुका हूँ यह सत्य नहीं है । सैकड़ों वर्षों तक मिथ्या व्यवहार के अभ्यास से इस सत्याभास असत्य की कल्पना हुई है और यद्यपि

यह अनुभव सिद्ध हो अनुभव तो होता ही है परन्तु जब तक इसकी प्रतीति बनी रहेगी तब तक बोध की पूर्णता नहीं हो सकती। मैं कहता हूँ कि पूर्णता का विकास धर्म के संचय से नहीं भविष्य काल में नहीं वर्तमान क्षण में ही व्यवहार में पूर्ण समता से प्राप्त होता है। महाशयो सोचिये कि भूख तो आपको अभी लगी है और मैं आप को अगले सप्ताह में भोजन देने की प्रतिज्ञा करूं तो क्या लाभ होगा? अथवा यदि आपके किसी प्रिय बन्धु का वियोग हो गया और कोई कहे अथवा आपको ही ज्ञान हो जावे कि जीव का नाश नहीं हुआ वह अमर है तो क्या? सत्य तो यह है और होता भी यही है कि आपके चित्त और हृदय में विरह है शून्यता है अतीव रिक्तता है और आप यह समझते हैं कि यदि आप जान जावें कि आपका भाई स्त्री अथवा पति का नाश नहीं हुआ उनकी सत्ता अभी विद्यमान है तो आपका शोक दूर हो जावेगा। परन्तु इस ज्ञान में भी मृत्यु का ध्यान है उस ज्ञान में बन्ध है उस ज्ञान में शून्यता है सन्ताप की वेदना निरन्तर बनी है। परन्तु यदि आप दृश्य का यथार्थ रूप जान लें और चैतन्य के अहंभाव से मुक्त हो जावें तो आप को सत्ता सामान्य का बोध हो जावेगा जिसे आप सत्य कहें परमात्मा कहें अथवा आप उसका और कुछ नाम रखें। परन्तु जो उपहित अहंकार मिथ्या भावना का मिथ्या परिणाम है उसका विकास करने से न आपको सत्य का न ईश्वर का न सुख का और न पूर्णता का ज्ञान होगा क्योंकि अहंभावना में सदा द्वन्द्व निरन्तर कलह और सदा दुःख रहता है॥

प्रश्न—क्या आप मसीहा हैं ?

उत्तर—क्या इस प्रश्न का कोई महत्त्व है ? आप जानते हैं जहाँ मैं जाता हूँ वहीं मुझ से यह प्रश्न पूछा जाता है। समाचार पत्रों के संवाददाता अपने लेख के लिये और श्रोतागण ज्ञान के लिये पूछते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि आप्त पुरुष के मुख से सुनकर उन्हें श्रद्धा हो जावेगी। मैंने इस बात का न कभी समर्थन किया है न प्रतिवाद किया है कि मैं मसीहा हूँ अथवा कृष्ण का अवतार हूँ क्योंकि यह बात निरर्थक है। कोई नहीं कह सकता यदि मैं कहूँ भी तो व्यर्थ होगा इस कारण मैं नहीं कहूँगा क्योंकि मेरी दृष्टि में यह असंगत निरर्थक प्रलाप होगा। आप लोग किसी सुन्दरमूर्ति अथवा चित्र को देखते हैं और आपका चित्त प्रसन्न होता है और आप लोग यह जानना चाहते हैं कि मूर्तिकार अथवा चित्रकार कौन है। आप लोग चित्र में मूति में अथवा तर्क में कला का कौशल नहीं देखते केवल निर्माता का ध्यान रखते हैं। इससे सिद्ध होता है कि आप लोगों में कल्पना के गुण दोष जानने की सामर्थ्य नहीं है केवल वक्ता के भरोसे रहते हैं। इस प्रकार आडम्बर बढ़ रहा है माना कि यह धर्म का आडम्बर है जैसा संसारी व्यवहार में आडम्बर होता है परन्तु फिर भी है आडम्बर ही ॥

इस कारण मित्रा ! आप लोग इसकी चिन्ता न करें। परन्तु विचार करें कि जो कुछ मैंने कहा वह कहाँ तक सत्य है। और मेरे कथन की मीमांसा करने में आप लोग दुष्ट प्रमाण को अलग कर देंगे क्योंकि विचार करने वाले बुद्धिमान मनुष्य को किसी

प्रमाण की आवश्यकता नहीं। मेरे वचनों पर विचार करने के अवसर पर आप यह नहीं कह सकते कि "मैं यह नहीं मानता" "हमने ऐसा सुना है" "यह कहा गया है" "शास्त्रों में यह लिखा है" "गुरुजी ने यह कहा है।" मैं नहीं समझता कि आप लोग जीवित आचार्यों की अपेक्षा प्राचीन आचार्यों को अधिक मान क्यों देते हैं ? आप जानते हैं कि जीवित आचार्य आपकी व्याख्या का प्रतिवाद कर सकते हैं इस कारण आप उन पर ध्यान नहीं देते परन्तु प्राचीन आचार्यों के कथन की मनमानी व्याख्या हो सकती है॥

हम लोगों को किसी वस्तु के गुण दोष विचारने की शिक्षा नहीं मिली है इस कारण कर्त्ता चित्रकार अथवा वक्ता की जिज्ञासा रहती है। इस कारण हमारे चित्त और हृदय शून्य और रिक्त होते जाते हैं प्रेम सत्यता तथा शुद्ध विचार का अभाव होकर कल्पनाओं की राशि बढ़ती जाती है॥

प्रश्न—अध्यात्म का विषय क्या है ?

उत्तर—मैं तो वही कहूँगा कि समता का व्यवहार। क्षण भर ठहरिये। मैं इसका अर्थ अभी समझाता हूँ। यदि आप राष्ट्रवादी हैं तो समता का व्यवहार नहीं कर सकते। कैसे कर सकते हैं ? यदि आपको जाति का ध्यान है अथवा वर्ण का ध्यान है तो आप जाति का ध्यान छोड़ कर शुद्ध बुद्ध व्यवहार कैसे कर सकते हैं ? जब आपके चित्त में स्वार्थ का आवेश है और पराये का ज्ञान है तो समता कैसे हो सकती है ? जब आपके चित्त में कल्प-

नायें भरी हुई हैं तो आप बोध पूर्वक समता से कैसे व्यवहार कर सकते हैं ? विश्वास तो केवल वर्त्तमान झगड़ों से बचने का उपाय है। जो मनुष्य व्यवहार में दारुण शंका करता है उसका भेद जानना चाहता है वह विश्वास नहीं करता समीक्षा करता है। वह पहिले विश्वास करके फिर समीक्षा नहीं करता। वैज्ञानिक किसी विश्वास पर आरूढ़ होकर परीक्षा नहीं करता वह परीक्षा करने लगता है। जो मनुष्य सामाजिक अथवा धार्मिक शासन के बन्धन में है वह समता पूर्वक स्वतन्त्रता पूर्वक बुद्धि पूर्वक व्यवहार नहीं कर सकता। शासन तो केवल अनुकरण करने की बिधि है मिथ्या है जो मनुष्य बिचारवान हैं वह शासन से मुक्त हैं। क्योंकि शासन के द्वारा वह केवल कठपुतली के समान संकेत के अनुसार नाचने वाला बन जाता है यन्त्र का चक्र बनता है चाहे वह यन्त्र सामाजिक हो अथवा धार्मिक हो इस कारण बिचारशील मनुष्य ही समता पूर्वक व्यवहार कर सकता है और उस समता में उसके संकल्प और वासनायें प्रकृत बुद्धियुक्त पूर्ण सन्तोषप्रद और निर्भय होती हैं॥

प्रश्न—जिस ज्ञान का आप वर्णन करते हैं उसके जिज्ञासु को कविता अथवा कलाओं के अध्ययन से कुछ लाभ होगा कि नहीं ?

उत्तर—क्या आप गाना सुनने इसलिये जाते हैं कि आपको कुछ लाभ हो ? कविता तो बिकनेवाला सौदा नहीं है। आप तो विनोद के लिये जाते हैं न कि लाभ के लिये। वह दूकान नहीं है। सत्य के अनुभव अथवा विनोद से पदार्थों के विचारों के

अथवा भोगों के संचय का आशय नहीं निकलता। आप किसी सुन्दर चित्र अथवा मूर्ति को देखने इसलिये जाते हैं कि आपको आनन्द का अनुभव हो न कि कुछ मिले। यही तो संसारी कल्पना है विनिमय है व्यापार है। इसी प्रकार आप सत्य का अनुसंधान करते हैं परमात्मा की उपासना करते हैं। आप ईश्वर से प्रार्थना करते हैं फूल चढ़ाते हैं पापों की क्षमा माँगते हैं यज्ञ करते हैं कि कुछ फल प्राप्त हो। इसीलिये आपके यज्ञ प्रार्थना विनती शरणापत्ति सब व्यर्थ हैं क्योंकि आप इसका फल चाहते हैं। इसका अर्थ यह है कि कोई मनुष्य मीठे बचन इसलिये बोलता है कि वह आपसे कुछ चाहता है और सभ्यता के सम्पूर्ण व्यवहार का आधार यही है। प्रेम भी विनिमय की वस्तु बन गया है। आप पुण्य इसलिये करते हैं कि आपको मुक्ति मिले सत्य का बोध हो। जब आप उपकार का बदला चाहते हैं तो वह धर्म नहीं रहा॥

प्रश्न—यदि आचार्यों मतों और सम्प्रदायों की शिक्षा से तात्कालिक चिकित्सा के समान मनुष्यों के चित्त के उद्वेग की शांति क्षणिक भी हो जब तक प्रधान वैद्य आकर रोग की समूल निवृत्ति न करें तो क्या बुराई है?

उत्तर—आपने आचार्यों और मतोंको पहिली सीढ़ी बनाया। क्या यह सच है? आप इस प्रतीक्षा में हैं कि और कोई गुरु आवे तो आपको कारण बता दे। जहाँ तक मैं समझा हूँ आपका कथन यह है कि हमें इतने कष्ट हैं कि उनके लक्षण शांत करने के लिये हमें आचार्यों और मतों की आवश्यकता है। क्या यही आशय

आपका है ? क्या आपका यही भाव है ? क्या आप यही मानते और कहते हैं कि आचार्य और मत केवल लक्षणों का उपचार करते हैं। यदि आप यह स्वीकार करते हैं तो आप निदान अवश्य ढूंढ़ लेंगे। परन्तु आप यह करेंगे नहीं। आप यह नहीं कहते कि आचार्य और सम्प्रदाय केवल लेप चढ़ाते हैं लक्षण शान्त करते हैं। यदि आप सचमुच यही समझते और मानते तो आपको शीघ्र ही निदान का ज्ञान हो जाता परन्तु आपका कथन ऐसा नहीं है। आप कहते हैं कि आचार्यों और मतों के द्वारा आपका सत्य को उपलब्धि होगी इस कारण यह प्रश्न युक्त नहीं है। संसारके प्राय. सभी लोग यह मानते हैं कि आचार्यों और मतों के द्वारा उनको सत्य का ज्ञान हो जावेगा। आप यह नहीं कहते कि उनसे केवल उपद्रव की शान्ति होती है। यदि आप ऐसा मानते तो शीघ्र ही कल ही आप उन्हें विदा कर देते। तब तो अच्छा होता। तब आप को बोध हो जाता। फिर आपको निदान बतलाने की आवश्यकता किसी को न रहती क्योंकि आप बुद्धि का प्रयोग करने लगने फिर आप विचार करने लगते श्रद्धा का आश्रय छोड़ देते। फिर तो आप स्वतन्त्र जीव हो जाते भय और लोकमत की प्रेरणा से संचालित यन्त्र के समान न बने रहते। तब तो संसार में विचार प्रेम और सुजनता का प्रसार दिखाई पड़ता और ये दारुण विभाग न दिखाई पड़ते ॥

प्रश्न—मानव समाज सहयोग और संगठन के आधार पर यदि प्रतिष्ठित है तो एक मनुष्य उसमें क्या कर सकता है ? नेता

लोग व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को अवकाश ही नहीं देते इस कारण उसकी विशेषता निरर्थक हो जाती है ॥

उत्तर—प्रश्न यह है कि जब मानव समाज सहयोग और संगठन के आधार पर प्रतिष्ठित है तो एक मनुष्य कर ही क्या सकता है ? अब यह देखना चाहिये कि कोई व्यक्ति यदि स्वतन्त्र हो जावे तो क्या वह सहयोग न देगा। अभी आप परिस्थिति के कारण विवश होकर सहयोग देते हैं—मुझे विवश होकर सहयोग देना नहीं कहना चाहिये क्योंकि यह सहयोग नहीं है—आपको स्थिति के अनुसार व्यवहार चलाना पड़ता है जिससे सच्चा और विवेकयुक्त सहयोग नहीं होता इसके बदले क्या स्वतन्त्रता से सहयोग हो सकता है ? मैं कहता हूं कि यह सम्भव है स्वतन्त्रता से स्वेच्छा से पूर्ण और प्राकृतिक सहयोग हो सकता है बाहरी प्रेरणा की कोई आवश्यकता नहीं। इस कारण आइये हम सब लोग मिल कर इस विषय पर विचार करें।

क्या व्यक्तिगत रूप से आप लोग अपनी इच्छा से ही सब काम करते हैं। वही तो सच्चा व्यक्ति है जो पूर्ण स्वच्छन्दता से काम करे अन्यथा आप लोग व्यक्ति नहीं हैं संचालित यन्त्र की कीलों के समान हैं। इसीलिये मैं कहता हूँ कि जब पूर्ण स्वतन्त्रता को प्राप्त कर लें तभी सच्चा सहयोग हो सकता है। अब यह देखना चाहिये कि सच्चा व्यक्ति कौन है ? वह मनुष्य नहीं जो स्थिति के अथवा प्रचलित प्रथा के अनुसार काम करता है। मैं कहता हूँ कि सच्चा व्यक्तित्व वही है जिसमें मन मिथ्या दृश्य के प्रपंच से मुक्त

हो और स्वतन्त्रता लाभ करे जिससे वह सहयोग करने लगे॥

अब देरी होगई है इस कारण मैं विस्तार से नहीं कह सकता परन्तु यदि आपको इस विषय में रुचि है तो आप विचार करेंगे और आप देखेंगे कि संसार की वर्त्तमान दशा में प्रत्येक मनुष्य अपने पड़ोसियों से लड़ रहा है अपने अधिकार सम्पत्ति और प्राणों की रक्षा के उपाय ढूंढ़ रहा है। इसमें सहयोग नहीं हो सकता। यह असम्भव है। बुद्धि सम्मत सच्चा और कार्यकारी सहयोग जिसमें स्वार्थ न हो तभी हो सकता है जब आप व्यक्तिगतरूप से पूर्ण स्वतन्त्रता लाभ करें। इसका अर्थ यह है कि संसार में सच्चा सहयोगी तभी हो सकता है जब लोगों को अपनी रक्षा के लिये प्रतिद्वन्द्वी उपाय न ढूंढ़ना पड़े। यह तभी हो सकता है जबकि हमारी सभ्यता का पूरा ढांचा ही बदल जावे जिसमें व्यक्तिगत स्वार्थ है जाति का मद है राष्ट भेद है वर्ण भेद है और धर्मानुगत विभाग हैं। जब आप लोग व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र हो जावें जब आप लोग इन बातों के सच्चे गुण दोष जान लें तब अपने स्वरूप में स्थित हो जावेंगे और फिर आप बुद्धिपूर्वक सहयोग करने लगेंगे क्योंकि तब यह अनिवार्य होगा। हमारी भावनायें मिथ्या दृष्टि और कल्पित बाधायें हम लोगों में भेदभाव उत्पन्न कर रही हैं और हम लोग स्वेच्छा से ही इस प्रथा को तोड़ सकते हैं। इसका यही अर्थ है कि आप लोग वस्त्र पहिने घरों में रहें परन्तु जातिभेद और स्वार्थ का परित्याग करें। जब आप लोगों को अपनी आव-

श्यक वस्तुओं का ज्ञान हो जावेगा जब आप लोग स्वार्थ बुद्धि से उत्पन्न जाति मद को त्याग देंगे तब आपकी स्वार्थ बुद्धि जाती रहेगी। सच्चा सहयोग तभी हो सकता है जब प्रत्येक मनुष्य संसार भर के हित की बात सोचने लगे। अभी सहयोग इस कारण से नहीं हो रहा है कि आप लोग भेड़ों के समान परिस्थिति के अनुसार इधर उधर भटक रहे हैं और कल्पित नियमों की शृंखला में आप लोगों को बाँधने का प्रयत्न कर रहे हैं क्योंकि आप लोग उनके स्वार्थ के साधन हैं और आप लोग इसलिये धोखा खाते हैं कि आप लोगों को यह पूर्ण विश्वास है और आप के मन में यह पूरी धारणा है कि औरों की हानि से ही आपकी रक्षा हो सकती है। मैं कहता हूँ कि संसार में सच्चा विश्राम और शान्ति मिल सकते हैं यदि आप लोग स्वतंत्र रूप से उन भावनाओं को त्याग दें जिनके द्वारा लोगों में भेद उत्पन्न हो रहे हैं और राष्ट्रों तथा राज्यों में निरन्तर युद्ध होते रहते हैं। मैं यह निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि जब तक ये बातें बनी रहेंगी तब तक न आप लोगों को शान्ति मिल सकती है न सुख मिल सकता है। इन भावनाओं से केवल कलह बढ़ता है निरन्तर युद्ध होते रहते हैं विपत्तियाँ आती हैं दुःख और कष्ट बढ़ते रहते हैं। ये सब लोगों के ही बनाये हुए हैं और स्वतन्त्रता से कार्य करके ही आप लोग इन कुरीतियों का निवारण कर सकते हैं और इस प्रपंच से आप छूट सकते हैं। तभी आप लोगों को जीवन के पूर्ण आनन्द का अनुभव प्राप्त हो सकेगा।

वसन्त विद्यालय के उद्यान में तीसरा व्याख्यान

२ अप्रैल १९३४

मित्रगण !

आज पहिले मैं कुछ प्रश्नों का उत्तर दूंगा और अन्त में अपने व्याख्यानों का संक्षेप सार सुनाऊंगा ॥

प्रश्न—अविनाशी तत्व जानने के लिये क्या ध्यान लगाना आवश्यक है और यदि है तो ध्यान लगाने की उचित विधि क्या है ?

उत्तर—मैं नहीं जानता साधारण लोग ध्यान शब्द का क्या अर्थ लेते हैं। जहां तक मैं समझता हूँ ध्यान शब्द से एकाग्रता का अर्थ लिया जाता है जो यथार्थ ध्यान से सर्वथा भिन्न है। हम यह समझ रहे हैं कि जब हम चित्त को एकाग्र करते हैं मन को बड़े प्रयत्न से वश में करके किसी विषय पर ध्येय पर किसी चित्र अथवा मूर्ति पर अथवा किसी विशेष पदार्थ पर एकाग्र दृष्टि करके लगाते हैं तो हम ध्यान कर रहे हैं॥

जब आप ऐसा करने का उद्योग करते हैं तब क्या होता है। आप एक विषय पर चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न करते हैं और अन्य विषयों से अन्य पदार्थों से उसे हटाते हैं और उसी विषय पर मन को निश्चल करने का प्रयत्न करते हैं मन को उसी विषय पर नियुक्त करते हैं चाहे वह कोई भावना हो मूर्ति हो अथवा कोई ऐसा विषय हो जो आपने पुस्तक में पढ़ा हो जब आप इसका

अभ्यास करने हैं तब क्या होता है? अन्य विचार मनमें आते रहते हैं और आप उन्हें हटाने का प्रयत्न करते हैं इस प्रकार यह निरन्तर द्वन्द्व मचा रहता है। जब आप किसी ध्येय पर मनको लगाना चाहते हैं तो ऐसे विचार मनमें घुस आते हैं जिन्हें आप नहीं चाहते। इससे आप केवल झगड़ा उत्पन्न करते हैं चित्त को सूक्ष्म संकुचित और एक ही विषय में संलग्न करते हैं परन्तु मेरी दृष्टि में ध्यान का आनन्द मनको वश में करने से नहीं जो संकल्प मन में उत्पन्न होता है उसका पूर्ण आशय समझने में प्राप्त होता है। आप कैसे कह सकते हैं कि यह संकल्प अच्छा है यह बुरा है यह प्रशंसनीय है यह निन्दनीय है? आप तभी कह सकते हैं जब आपको उसके यथार्थ तत्व का बोध हो जावे। इस कारण मेरी दृष्टि में ध्यान का आनन्द तभी मिल सकता है जब आप प्रत्येक संकल्प की यथार्थ महिमा जान लें। स्वाभाविक बिचार से आप प्रत्येक संकल्प की यथार्थ महिमा जान सकते हैं और इस प्रकार अपने चित्त को नित्य के द्वन्द्व से मुक्त कर सकते हैं॥

मान लीजिये कि आप किसी विषय पर चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न कर रहे हैं—आप यह सोच रहे हैं कि मैं कौन से वस्त्र पहिनूं यह संकल्प मन में उठा अथवा मुझे क्या देखना है अथवा मुझे खाने को क्या मिलेगा, प्रत्येक संकल्प को पूरा होने दीजिये उसे हटाने का प्रयत्न न कीजिये तब आप को अनुभव होगा कि मन अब प्रतिद्वन्द्वी संकल्पों का युद्धक्षेत्र

नहीं रहा। आप के ध्यान की अवधि दिन में कुछ घड़ियों की अथवा कुछ क्षणों की नहीं रही परन्तु मन और हृदय की दिन भर निरन्तर चेतना हो गई इसी को मैं सच्चा ध्यान समझता हूँ। इसी में शान्ति मिलती है। इसी में आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु फल प्राप्त करने की आशा से संयम करके आप लोग जो ध्यान करते हैं उसकी विधि दूषित है और संकल्प का क्षय करने वाली है। हमें ऐसा करने की प्रेरणा क्यों की जाती है? क्योंकि हम दिन भर ऐसे काम करते रहते हैं जो हमारी रुचि के अनुकूल नहीं है जिनसे हमें सुख नहीं मिलता। इसलिये हम कहते हैं कि जो विषय हमें प्रिय है उसमें चित्त लगाने के लिये हमें ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार आप मिथ्या निदान का मिथ्या उपचार करते हैं। आर्थिक सामाजिक और धार्मिक बन्धनों में फंस कर आप मनमाना कार्य नहीं कर सकते और इस बाधा के कारण आप स्वतंत्रता पूर्वक क्रीड़ा करने के लिये घण्टे दो घण्टे का अवकाश चाहते हैं। इस कारण संयम करके विशेष विषय का ध्यान करना आवश्यक है इस प्रकार संयम की विधि चली। परन्तु यदि आप दृश्य के बंध को समझ जावें और कर्म के द्वारा उसको तोड़ डालें तो मन का संयम करके उसे निर्दिष्ट मार्ग में चलाने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी॥

यदि आप लोग इस बात का यथार्थ तत्व समझना चाहें तो तनिक ध्यान देकर सोचना पड़ेगा क्योंकि जिस मनुष्य को केवल नियम के अनुसार चलने की शिक्षा रही मिली है उसका मन यदि

शिक्षित है तो उसे किसी मत की शिक्षा मिली होगी जो मिथ्या समाज मिथ्या सिद्धान्त मिथ्या तर्क पर प्रतिष्ठित होगा। यदि आप तत्व को जान सकते हैं और मिथ्या बातों का निर्णय कर सकते हैं तो आपका चित्त द्वन्द्वों से मुक्त हो जावेगा और सच्चा ध्यान लग जावेगा। तब आपको विचार के आनन्द का अनुभव होने लगेगा॥

प्रश्न—जिसे आप बोध कहते हैं वह क्या है ? क्या आप कुछ विस्तार से वर्णन करेंगे ?

उत्तर—हम लोगों को काम करने का अभ्यास है। विचार करना भी परिश्रम का काम है। इस निरन्तर परिश्रम का हमें अभ्यास है। अब मैं परिश्रम की विधि नहीं एक और उपाय बताना चाहता हूँ जो नवीन है। जब आप समझते हैं कि यह वस्तु बाधक है विष है जब आपको पूरा ज्ञान हो जाता है कि यह अनिष्ट है तो उसे त्यागने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता चित्त उस वस्तु से स्वयमेव हट जाता है। जब आप किसी पदार्थ को भयंकर विषैला समझने लगते हैं और आपके चित्त और हृदय में यह भावना सिद्ध हो गई तो आप उस वस्तु की वांछा से मुक्त हो ही गये। जब तक आप उसके दोष नहीं जानते उसे विष नहीं समझते जब तक उससे सुख दुःख दोनों मिलते हैं तभी तक हम क्रीड़ा करते हैं॥

अब हमने अनेक बंधनों की कल्पना करली है जैसे जाति भक्ति देशभक्ति राजभक्ति लोकमत का आदर और आनन्द का

निरन्तर लालसा। इन सब की कल्पना भय के कारण हुई है। परन्तु यदि हम पूर्णतया समझ जावें कि देश भक्ति यथार्थ दृष्टि से मिथ्या सिद्ध होती है और हानिकारक है तो फिर उस वासना से युद्ध नहीं करना पड़ेगा उसका विरोध करने की कोई आवश्यकता नहीं। उसके दोष आपके ध्यान में आते ही वह निवृत्त हो जावेगी। परन्तु उसके दोष आप कैसे जानेंगे? देशभक्ति को स्वीकार करके अथवा उसका विरोध करके नहीं। यदि आप देश भक्ति के दोष जानना चाहते हैं। तो पहिले आपको उसके संसर्ग से पृथक् होने का ज्ञान होना चाहिये, जब आपको देशभक्ति से न प्रेम होगा न द्वेष होगा तब देशभक्ति का यथार्थ तत्व आपकी समझमें आजावेगा। तब आप उसके सच्चे गुण दोष जान लेवेंगे॥

देशभक्ति है क्या? अब मैं आपको इसका यथार्थ स्वरूप बतलाता हूँ। इसका यह अर्थ नहीं है कि जो कुछ मैं कहूँ उसे आप मान ही लें अथवा त्याग ही दें। विचार करें कि यह मिथ्या है अथवा नहीं। जब आप उसके दोष समझ जावेंगे तो विरोध नहीं करना पड़ेगा। उसकी निवृत्ति आप ही हो जावेगी। जब आप विषैला साँप देखते हैं तो तत्क्षण हट जाते हैं। जब तक आपको पूरा निश्चय नहीं होता कि यह साँप विषैला है तब तक आप उसके साथ क्रीड़ा करते हैं। इसी प्रकार विना विश्वास अथवा विरोध के हमें यह निश्चय कर लेना चाहिये कि देशभक्ति हानिकारक है कि नहीं॥

पहिली बात तो यह है कि आपके मन में देशभक्ति का कैसे उदय हुआ ? प्रति दिन तो यह भाव आपके मन में आता नहीं। न यह भाव आपके मनमें सदा रहता है प्रतिदिन आपको इतिहास के द्वारा देशभक्ति की शिक्षा दी जाती है कि आपके देश ने अमुक देश पर विजय प्राप्त की आपका देश अमुक देश से अच्छा है जिस भाव को मैं अप्राकृतिक समझता हूँ उस देशभक्ति की शिक्षा आपको क्यों दी गई ? यह बात नहीं है कि आप एक देश को दूसरे से सुन्दर नहीं समझते परन्तु उस अनुराग से देशभक्ति का कोई सम्बन्ध नहीं वह तो सौन्दर्य का प्रभाव है। संसार में ऐसे भी प्रदेश हैं जहां एक भी वृक्ष नहीं और कड़ी धूप पड़ती है ऐसे देश की महिमा कुछ और ही है। यदि ऐसे देश में कोई मनुष्य छाया चाहता है अथवा पत्तों के हिलने से जिसके चित्त में विनोद होता है वह देशभक्ति नहीं। देशभक्ति की शिक्षा स्वार्थ के कारण दी गई है। वह मनुष्य का स्वाभाविक गुण नहीं। स्वाभाविक गुण तो सौन्दर्य की उपासना है देश की ममता नहीं। इसकी शिक्षा उन लोगों ने दी है जो अन्य देशों में अपना माल बेचना चाहते हैं यदि मैं माल बनाता हूँ और इस देश में मेरे माल की खपत पूरी हो चुकी और मैं अपना व्यापार बढ़ाना चाहता हूं तो मुझे अन्य देशों में जाना पड़ेगा और दूसरे देशों के व्यापार पर विजय प्राप्त करना पड़ेगी विजय प्राप्त करने के लिये साधन चाहिये। इस कारण देश की ममता की कल्पना की गई और पुस्तकों व्याख्यानों शिक्षा इतिहास आदि के द्वारा इस देशभक्ति का प्रचार

किया जाता है जिससे संकट के समय हम लोग उस देश के साथ लड़ने को तैयार हो जावें। और स्वार्थी लोग देशभक्ति का भाव इतना भर देते हैं कि उसके प्रभाव से आविष्ट होकर आप और लोगों को असभ्य कहने लगते हैं और उनसे लड़ने को तैयार हो जाते हैं ॥

यह बात स्पष्ट है मेरी कल्पना नहीं। आप इसका मनन कर सकते हैं यदि आप निष्पक्ष भाव से देखें उसके साथ सहमत होकर अथवा विरोध की दृष्टि से नहीं परन्तु बिचार करें तो यह स्पष्ट प्रतीत होने लगेगा, जब आपको निश्चय हो जावे कि देशभक्ति स्वतन्त्र पूर्ण और सच्चे जीवन की बाधक है तो उसका विरोध न करना पड़ेगा। उसकी भावना आपके चित्त से स्वयमेव निवृत्त हो जावेगी।

प्रश्न—आप देश के नियमों का विरोध करेंगे ?

उत्तर—देश के नियम! क्यों नहीं? यदि आप देशभक्ति से विमुख हैं और देश के नियम आपके विरुद्ध हैं और युद्ध का आदेश करते हैं और आप के चित्त में देशभक्ति की वासना नहीं रही तो आप हृदय से उसका विरोध करेंगे। चाहे जेल जाना पड़े तबभी आप शासन का विरोध करेंगे। शासन का विधान मनुष्यों का कल्पित है और मनुष्य ही इसकी अवज्ञा कर सकते हैं (हर्षध्वनि) कृपा कर तालियां न बजाइये क्योंकि समय व्यर्थ नष्ट होता है।

इस प्रकार क्या हो रहा है ? देशभक्ति चाहे पाश्चात्य हो अथवा पूर्वीय हो एकसी है मनुष्यों के हृदय का विकार है और उनके

भावों को कलुषित कर रही है इस प्रकार देशभक्ति एक व्याधि है और जब आप इसका निश्चय करलें जान लें कि यह रोग है तब देखिए कि आपके चित्त पर इस भावना का कैसा प्रभाव पड़ता है। जब युद्ध के समय में संसार भर में देशभक्ति की चर्चा छिड़ जावेगी तब आप समझ जावेंगे कि देशभक्ति का प्रचार मिथ्या है और तब आप स्वभाव के अनुसार कार्य करने लगेंगे॥

इसी प्रकार विश्वास भी एक बन्धन है। यदि विश्वास की भावना दृढ़ है तो मन स्वतन्त्र होकर बिचार नहीं कर सकता। वह रस्सी से बंधे हुए पशु के समान हो जाता है। वह रस्सी छोटी हो अथवा लम्बी हो परन्तु वह बन्धन है इस कारण मन पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता से बिस्तार से उच्छृंखल होकर बिचार नहीं कर सकता। उसके बिचार की सीमा उस रस्सी की अवधि ही है। इस प्रकार बिचरना विचार नहीं वह तो बिश्वास की सीमा के भीतर ही घूमना है। लोगों के भाव विश्वास के सूत्र में बंधे हैं इस कारण वे बिचार नहीं कर सकते। प्रायः लोग अपनी भावनाओं में आसक्त हैं इस कारण उनके बिचार संकुचित रहते हैं विश्वास अथवा मत की सीमा के भीतर ही रहते हैं इसी कारण उनका बिचार अपूर्ण रहता है। भावनाओं के कारण मनुष्यों में भेदभाव उत्पन्न होता है। यदि आप यह समझ जावें यदि आपको पूरा निश्चय हो जावे कि आपका बिचार श्रद्धा की सीमा में नियत है तो क्या होगा? आपको बोध हो जावेगा कि हमारे बिचार की सीमा नियत है हमारा बिचार बिश्वास के सूत्र में बंधा है फंस

गया है। बोध के प्रकाश में आपको अपने भ्रम का ज्ञान हो जावेगा। आपका मन बन्धन से छूट जावेगा और आप स्वतन्त्रता से पूर्णता से विचार करने लगेंगे। इसका अभ्यास कीजिए तब आप जानेंगे कि जीवन निरन्तर युद्ध नहीं है बासनाओं से नियमों का विरोध नही है संग्राम नहीं है। तब न बासना रहेगी न नियम रहेंगे केवल आसक्ति रहित सच्ची क्रिया रह जावेगी॥

दूसरा उदाहरण लीजिये आप डरतेहैं कि लोग क्या कहेंगे-यह भय साधारण है। इसका विरोध करने से कुछ लाभ न होगा जिसका अर्थ यह होगा "मुझे चिन्ता नहीं कि लोग क्या कहेंगे" और लोकमत को ठुकरा कर काम किया जावे। परन्तु यदि आप जान जावें कि लोकमत का डर आपको क्यों है तो यह भय निर्मूल हो जावेगा। इसका कारण अथवा निदान जानने के लिये आपको भय उपस्थित होते ही विचार करना चाहिये तब आप उसका स्वरूप जान जावेंगे कि आपको नौकरी छूटने का डर है अथवा लड़के लड़कियों के बिवाह की शंका है कि समाज का डर है इत्यादि। इस प्रकार विवेक के द्वारा निरन्तर विचार से बोध उत्पन्न होता है और उसकी आग में मिथ्या व्यवहार का मल भस्म हो जाता है। तव जीवन का रूप संग्राम का नहीं रहता क्योंकि आपका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहता है॥

आप इस बात को न मानें। मेरे कथन पर आप विश्वास न करें परीक्षा करें। जो उदाहरण मैंने आपको दिये हैं भ्रम श्रद्धा देशभक्ति इन तीनों की समीक्षा करें तो आपको पता लगेगा कि

आप का मन कैसे जाल में बंधा फंसा है और इस कारण जीवन संग्राम रूप हो गया है। जहां मन फँसा व्यवस्थित हो गया वहां झगड़ा दुःख अवश्य होगा। क्योंकि चित्त तो नदीके प्रवाहके समान है। वह तो सदा चलता ही रहेगा। उसकी गति अनन्त है। यदि आप संकल्प चित्त और हृदय के स्वतंत्र निरन्तर प्रवाह में बाधा डालें तो द्वन्द्व उपस्थित होगा और इस द्वन्द्व को नाश करने का उपाय चाहिये इसी प्रकार यह संसार चक्र चला करता है उपाय ढूंढ़े जाते हैं मिथ्या कल्पना की जाती है परन्तु प्रपंच का कारण नहीं जाना जाता। इस प्रकार पूर्ण बोध के द्वारा आप चित्त और हृदय को उन बंधनों से मुक्त करते हैं जो दृश्य के भ्रम से उत्पन्न हुए हैं और जब तक चित्त दृश्य में फंसा है जब तक चित्त में दृश्य के यथार्थ रूप का बोध नहीं होता तब तक द्वन्द्व मचा रहेगा और उसका कल्पित उपाय रहेगा जिसे आप आत्म संयम कहते हैं॥

प्रश्न—जब यह ज्ञान हो गया कि संसार से भागने की चेष्टा सब प्रकार से व्यर्थ सिद्ध हुई तो अब क्या करने को रह गया?

उत्तर—जब आप जान गये कि मैं बन्धन से छूटना चाहता हूँ जब बाहरी उपचार से चित्त हट गया तब क्या बचा यह आप जानना चाहते हैं। क्या बचा? बोध विज्ञान। ठीक है न? मान लीजिये आपको किसी प्रकार का दुःख है मृत्यु का क्लेश है अथवा और कोई क्षणिक कष्ट है। यदि मृत्यु का त्रास है तो आप पुनर्जन्म को मान कर अथवा प्रेत अवस्था के जीवन को मान कर उस त्रास से बचना चाहते हैं। इसकी व्याख्या मैं कल कर चुका हूँ

इस कारण आज न करूंगा। परन्तु जब आप जान गये कि यह तो बचने की युक्ति है तब क्या होगा। तब आप युक्ति की मीमांसा करेंगे कि उसमें कुछ सार है कि नहीं और इस विचार की प्रक्रिया से ही बोध विज्ञान उत्पन्न होगा। यही विज्ञान जीवन का सार है। आपको और किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं॥

अथवा मान लीजिये कि आपको किसी प्रकार का क्षणिक कष्ट है और आप उससे बचना भागना चाहते हैं मन बहलाने का प्रयत्न करते हैं चित्त को हटाने का यत्न करते हैं परन्तु चित्त को हटाने के प्रयत्न से आपको दुःख के निदान का बोध नहीं होता इस कारण आप विनोद की मात्रा बढ़ाते हैं चाहें चित्रपट के द्वारा अथवा मन्दिर में जाकर अथवा अन्य किसी उपाय से। इस कारण यह प्रश्न नहीं है कि जब आपको भागने की चिन्ता न रही तो क्या रह गया क्योंकि क्लेश की निवृत्ति के जो उपाय आपने सोचे हैं उनकी विवेचना करने से बोध प्राप्त होता है और वही बोध चेतन आनन्द है वही जीवन की सार्थकता है॥

प्रश्न—भय का मूल कारण क्या है?

उत्तर—क्या आत्मरक्षा की चिंता मूल कारण नहीं? आत्मरक्षा और स्वार्थ की रक्षा? यदि आपके पास धन है तो आपको नौकरी मिलने के झंझट की चिन्ता नहीं परन्तु आपको और कोई शंका है आपको डर है कि कहीं प्राणयात्रा सहसा समाप्त न हो जावे और जीवन का लोप हो जावे अथवा धन की हानि हो। इस प्रकार यदि आप विचार करेंगे तो आप जान जावेंगे

कि जब तक मनमें आत्म रक्षा का संकल्प वर्त्तमान है जब तक मन अहंकार की भावना में वद्ध है तब तक भय सदा रहेगा। जब तक अहंभाव रहेगा भय भी रहेगा इस कारण भय का यही मूल कारण है। मैंने गत रात्रि को यह समझाने की चेष्टा की थी कि यह अहंभाव कैसे उत्पन्न हुआ मिथ्या दृश्य के कारण कैसे इसकी कल्पना की गई तथा उस द्वन्द्व के कारण जो कि दृश्य का परिणाम है। जो प्रथा इस समय प्रचलित है अपनी प्राणयात्रा के लिये भी उसके अनुसार आपको युद्ध करना पड़ेगा इसी से भय उत्पन्न होता है फिर हम उस भय के निवारण का उपाय ढूंढते हैं। परन्तु यदि आप भय की कल्पना के हेतु रूपी प्रथा को बदल दें तो उपाय की कोई आवश्यकता नहीं फिर तो भय की उत्पत्ति का कारण ही नष्ट हो जावेगा। क्या आप लोग ऐसा प्रबन्ध नहीं सोच सकते कि जीवन के लिये संग्राम न करना पड़े। यह बात नहीं है कि भय के और हेतु नहीं हैं उन पर हम पीछे विचार करेंगे परन्तु यह राष्ट्रभाव जातिभाव वर्ण भेद सम्पत्ति के अधिकार और स्वार्थ का व्यवहार इन्हीं बातों के कारण आत्मरक्षा तथा क्षेम कुशल के लिये निरन्तर संग्राम किये बिना स्वाभाविक जीवन व्यतीत ही नहीं हो सकता ये बातें बुद्धिमानों के राज्य में विलक्षण जान पड़ती हैं। हम लोग सभ्य कहलाते हैं परन्तु हमारा व्यवहार पशुओं का सा है अपनी तथा अपने कुल की रक्षा के लिये जहां निरन्तर युद्ध करना पड़ता और भय का यह एक प्रधान कारण है। यदि आप 'प्रपञ्च और

उसके झगड़ों को समझ जायें तो आप निश्चिन्त हो जावें और भय जाता रहे ॥

परन्तु एक और प्रकार का भय है वह भय मानसिक दरिद्रता का है। आर्थिक दरिद्रता तो है ही परन्तु मन में हीनता रिक्तता तथा असहायता का भी डर है। इस कारण भयभीत होकर हम अनेक उपाय ढूंढते हैं जिनसे हम सम्पन्न हो जावें। इसका फल क्या होता है ? आप लोग उस पोल को उस दोष को असंख्य युक्तियों से छिपा देते हैं। साहित्य भी एक उपाय है बहुत सी पुस्तकें पढ़ना–मै पढ़ने का विरोधी नहीं हूं। अथवा क्रीड़ा का व्यसन हो निरन्तर परिश्रम सम्बन्ध का सर्वथा सुरक्षित रखना दौड़ धूप करना जत्थे बनाना समाज और सभा में स्थापित करना संघ बनाना चतुराई सीखना आदि अनेक उपाय हैं। आप जानते हैं हम सब लोग यही कर रहे हैं। इन सब बातों से मन की उस असहायता के भय का बोध होता है जो किसी न किसी दिन हमारे सन्मुख आवेगी। जब तक चित्त में उस शून्यता रिक्तता पोल और अभाव का भान होता है। तब तक भय बना ही रहेगा ॥

उस भय से सच्चा त्राण पाने के लिये उस निःसारता से शून्यता से बचने के लिये औषधियों का लेप लगाने से काम नहीं चलेगा परन्तु उस शून्यता का बोध ज्ञान होना चाहिये जिससे विवेक उत्पन्न हो और आप प्रत्येक अनुभव प्रत्येक आदर्श और प्रत्येक स्थिति का यथार्थ गुण और महत्व जान सकें। तब आपको सच्चा ज्ञान होगा जो गंभीर अगाध और असीम होगा इस कारण

शून्यता का अभाव होजावेगा। यदि आप शून्यता को छिपाना चाहेंगे किसी द्रव्य के संचय से उसके रीतेपन को भरना चाहेंगे तो वह बढ़ती ही जावेगी। परन्तु यदि आपको उस रिक्तता का ज्ञान होगया और आप भागने का प्रयत्न न करें तो आपकी बुद्धि तीक्ष्ण होजावेगी क्योंकि आप कष्ट का अनुभव कर रहे हैं। जहां आपको अपनी शून्यता असारता का पता लगा तो मनमें द्वन्द्व मचने लगा। इसी संग्राम के अवसर में आपको चलते चलते आदर्श समाज धर्म और कल्पित नियमों का तथा अनुभव के यथार्थ मूल्य का बोध होता है। शून्यता के संवरण के बदले ज्ञान की पूर्णता भर जाती है। तब आप अकेले रहें अथवा जन समूह के मध्य में रहें आपको विरह का बोध न होगा और फिर शून्यता असारता भी न रहेगी॥

प्रश्न—क्या प्रकृति ही लोगों को मार्ग पर नियुक्त करेगी अथवा किसी को सदा मार्ग दिखाना पड़ेगा ?

उत्तर— प्रकृति का भरोसा करना उचित नहीं। क्योंकि स्वभाव इतना कलुषित होगया है परम्परा शासन और व्यवहार के झंझटों में ऐसा फँस गया है कि उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। स्वार्थ की प्रकृति मिथ्या है कल्पित है। इसका कारण मैं आपको अभी बतलाता हूँ। वह उस समाज की कल्पना की हुई है जो व्यक्तिगत अधिकारों पर प्रतिष्ठित है इस कारण युगों से स्वार्थ-बुद्धि की कल्पना की जारही है। हम कहते हैं स्वार्थबुद्धि स्वाभाविक है मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी है। परन्तु यदि आप विचार करें तो

आप जानेंगे कि यह मिथ्या व्यवहार की कल्पना है और स्वार्थ बुद्धि मनुष्य का प्राकृतिक गुण नहीं। इसी प्रकार हमारे स्वभाव में अनेक गुण मिथ्या आरोपित कर दिये गये हैं और यदि आप इन कल्पित सिद्धान्तों से बचने के लिये किसी अन्य मत का आश्रय लें तो आप दूसरे बन्धन में जा फँसेंगे आप एक को छोड़ कर दूसर मत मानने लगेंगे जो आपकी बुद्धि को फिर भ्रष्ट कर देगा। परन्तु यदि आप प्रत्येक वासना का विचार करें उस वासना में रत न हो जावें परन्तु उसके यथार्थ गुण ढूंढ़े तो सच्चा ज्ञान होगा और स्वतंत्र स्वाभाविक कर्म होने लगेंगे ॥

आप लोग भाग्यवश अथवा दुर्भाग्यवश चार पांच दिन से मेरे व्याख्यान सुनते रहे हैं और अब आप समझ गये होंगे कि केवल मेरे व्याख्यान सुनने से कोई फल न होगा इससे ज्ञान प्राप्त न होगा। ज्ञान तो क्रिया से उत्पन्न होता है। ज्ञान मोल नहीं बिकता न पुस्तकों के पढ़ने से अथवा शास्त्रों के अवलोकन से प्राप्त होता है। मैंने कोई दर्शनशास्त्र नहीं पढ़े। व्यवहार की क्रिया से ही आपको सत्य और भ्रम का बोध हो जावेगा परन्तु बहुत कम लोग कार्य करने को उत्सुक व्यग्र हैं। लोग तो बैठ कर विवाद करना चाहते हैं देवालयों में जाना चाहते हैं गूढ़ विषयों की कल्पना करना चाहते हैं क्योंकि उनके चित्त मद और आलस्य से पूर्ण हैं और उनके हृदय में समाज और प्रचलित व्यवहार के विरोध का भय बना हुआ है। इस कारण मेरा व्याख्यान सुनने से अथवा मेरा कथन पढ़ने से न आप को ज्ञान होगा न सत्य का बोध होगा जो

जीवन का आनन्द है और जो निरन्तर प्रवाह रूप है। ज्ञान तभी उत्पन्न होगा जब आप इन बन्धनों का यथार्थ रूप जान लेंगे और कार्य करने लगेंगे। देश भक्ति अथवा मत का ही बन्धन लीजिये और क्रिया करने लगिये फिर देखियेगा कि आप विचार की कितनी गम्भीरता गाढ़ता में पहुँच जावेंगे। आप किसी वेदवादी अथवा दर्शनशास्त्री से कहीं अधिक जान जावेंगे और क्रिया के अवसर में ऐसा समय आवेगा कि आप अनुभव करेंगे कि क्रिया के फल की इच्छा आपको न रहेगी आप की क्रिया वासना से रहित होगी तथापि आपकी क्रिया सार्थक होगी। जैसे वैज्ञानिक लोग प्रयोग करते हैं उन प्रयोगों से अनुभव प्राप्त होते रहते हैं परन्तु वे प्रयोग करते रहते हैं इसी प्रकार इस प्रयोग में मन और हृदय को बन्धनों से छुड़ाने के प्रयत्न में क्रिया होगी फल होगा। परन्तु मुख्य बात यह है कि संकल्प और वासनाओं का प्रवाह निरन्तर चलता रहे। यदि व्यवहार की सभी क्रियायें इस प्रवाह में लीन हो जावें तो उस कर्म से नये समाज नये व्यवहार की स्थापना होगी फिर समाज का कोई नियत आदर्श न रहेगा परन्तु उस क्रिया से समाज भी चालू रहेगा न स्तब्ध होगा न शान्त होगा और नीति भी स्वतंत्र धारण हो जावेगी किसी धर्म किसी समाज के आधार पर प्रतिष्ठित अथवा भय के उद्वेग से जनित न होगी॥

इस प्रकार मन को मिथ्या कल्पनाओं से मुक्त करने की क्रिया से असद्भाव के स्थान पर सद्भाव नहीं उत्पन्न होते केवल सद्भाव

रहते हैं। फिर आप को अनुमान की आवश्यकता नहीं रहती परन्तु अविद्या का बोध होने से मन स्वतंत्रता पूर्वक विचरता है अनन्त हो जाता है और क्रिया अव्याहत स्वाभाविक हो जाती है और जीवन शिक्षा का संग्राम का क्षेत्र नहीं रहता परन्तु बोधमय पूर्ण तथा आनन्दमय हो जाता है। यही मानवी जीवन के विकाश की चरम सीमा है ॥

———०———

औकलैण्ड के व्यापारियों से वार्तालाप ६ अप्रैल १९३४

मित्र गण–मैं समझता हूँ कि प्रायः हम लोगों की यही धारणा है कि संसार में यदि स्वार्थ सचमुच न रहे तो जगत का दृश्य बड़ा अद्भुत हो जावेगा और यदि प्रत्येक मनुष्य स्वभाव के अनुसार पूर्णतया स्वतन्त्रता से रह सके तो इसी भूमि पर स्वर्ग की प्राप्तिहो जावेगी। परन्तु इस धारणा के अनुसार कार्य करने वाले कितने हैं, आदर्श मानने वाले दिव्य लोक की कल्पना करने वाले बहुत हैं परन्तु उद्योग करने वाले लोग थोड़े हैं। परन्तु उद्योग के बिना दिव्य लोक की प्राप्ति अथवा स्वार्थ का अभाव नहीं किया जा सकता॥

अब उद्योग सामाजिक व्यवसाय तभी किया जा सकता है जब पहिले व्यक्तिगत रूपसे इस प्रश्न पर विचार कर लिया जावे। जब मनुष्य स्वस्थ होता है तब प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ की तृष्णा से घृणा करताहै चाहे वह तृष्णा किसी महंत की हो किसी व्यापारी की वैद्य की राजनीतिज्ञ की अथवा किसी और व्यक्ति कीहो। परन्तु हम लोग अपने हृदयमें स्वार्थपरायणता की भीषण क्रूरता का अनुभव करते हैं जब कभी हम क्षण भर के लिये भी इस विषय पर विचार करते हैं। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति इस स्वार्थ के चक्कर में फंसा है और हम धैर्यपूर्वक उस दिन की बाट देख रहे हैं जब हमारी आशापूर्ण होगी और किसी अद्भुत घटना के द्वारा लोक के व्यवहार में परिवर्त्तन हो जावेगा। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य यह समझता है कि, हम क्या करें संसार को अपनी गति से चलने दें कभी न

कभी दैवयोग से नई स्थिति उत्पन्न हो ही जावेगी। परन्तु नया चलन चलाने के लिये नया व्यवहार नवीन प्रकार की संस्था स्थापित करने के लिये कुछ व्यक्तियों को ही अग्रसर होना पड़ेगा। व्यापारी लोग अथवा कोई विशेष व्यक्ति सोचने लगे कि हमारा धन्धा स्वार्थ के आधार पर प्रतिष्ठित है कि नहीं ॥

मैं पहिले वर्णन कर चुका हूँ पण्डितों के स्वार्थ का आधार लोगों का त्रास है व्यापारियों के स्वार्थ का आधार अपना उत्कर्ष धन का संचय लालच सूक्ष्म अभिमान और परितोष है और मैं समझता हूँ कि आप सब लोग व्यापारी ही हैं यह असम्भव है कि आप लोग व्यापार छोड़ कर अन्य विषय पर ध्यान ही न दें। अन्ततः व्यापारी भी मनुष्य हैं और जब तक मनुष्य स्वार्थ की चिन्ता में फंसे हैं तब तक उनके मन में स्वार्थ के विरुद्ध भावनायें उठती रहेंगी। जब आप ऐसे पद पर पहुँच जावें कि आप लोगों को धूर्तों का डर न रहे तभी आप स्वार्थ की सत्ता व्यवहार का परिवर्त्तन अथवा जीवन में स्वतंत्रता के समावेश की बात भूल सकेंगे। जब हम कुछ निश्चिन्त हो जाते हैं तभी हम भूल जाते हैं और यह समझने लगते हैं कि सब ठीक है परन्तु फिर भी यह धारणा मन में बनी ही रहती है कि जब तक संसार में स्वार्थ है तब तक मनुष्य को सच्चा सुख नहीं मिल सकता ॥

अब मैं समझता हूँ कि स्वार्थ बुद्धि तभी उत्पन्न होती है जब मनुष्य आवश्यकता से अधिक संचय करना चाहता है। अपनी सच्ची आवश्यकता जानने के लिये बुद्धि चाहिये और जब तक

आप चिन्ता और उद्वेग से भागते रहेंगे तब तक आपके मन में बुद्धि का विकास नहीं हो सकता। मनुष्य को स्वभाव से ही अन्न वस्त्र घर आदि की वांछा होती है परन्तु प्रत्येक मनुष्य की वांछा तभी पूर्ण हो सकती है जब लोग अपनी आवश्यकताओं को समझने लगें स्वाभाविक आवश्यकताओं को जानें संकल्प और व्यवहार का प्रबन्ध उन्हीं के अनुसार करें तभी संसार में सच्चा सुख और स्वातंत्र्य मिल सकता है॥

अब वर्त्तमान स्थिति क्या है? हम लोग निरन्तर झगड़ों में फंसे रहते हैं परस्पर स्पर्धा करते हैं प्रतिदिन प्रतियोगिता रहती है कोई निश्चिन्त नहीं रह सकता परन्तु फिर भी बिना किसी विशेष आयोजन के हम लोगों का व्यवहार चल रहा है। प्रत्येक मनुष्य यह जानता है कि व्यवहार में सम्पूर्ण परिवर्त्तन आवश्यक है किसी दैवी घटना के चमत्कार से इस परिवर्त्तन के हो जाने की आशा करना व्यर्थ है॥

यद्यपि संसार में हमें विप्लव होने का कुछ डर हो तथापि परिवर्त्तन की बड़ी आवश्यकता को हम लोग समझते हैं परन्तु फिर भी हम लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति यह परिवर्त्तन करने को असमर्थ है क्योंकि हम लोगों ने व्यक्ति गत रूप से विचार नहीं किया और व्यक्ति गत रूप से इस स्वार्थ के व्यवहार की कभी आलोचना नहीं की। जब लोगों में बुद्धि का सच्चा विकास होगा तब वे ऐसी संस्था का निर्माण करेंगे जो मनुष्यों की सच्ची आवश्यकताओं का प्रबन्ध करेगी और स्वार्थ के आधार पर प्रतिष्ठित

न होगी। हम लोग व्यक्तिगत रूप से समाज के बाहर नहीं रह सकते। समाज एक है और जब तक प्रत्येक व्यक्ति केवल अपनी अथवा अपने परिवार की चिन्ता में मग्न है तब तक स्वार्थ का व्यवहार बना ही रहेगा॥

जब तक आप लोग व्यक्तिगत रूप से संसार के व्यवहार को मनुष्यों के व्यवहार को व्यापार से भिन्न समझते रहेंगे तब तक संसार में सच्चा सुख नहीं मिल सकता, मैं यह कह सकता हूँ कि आप लोग व्यापार की स्वतंत्रता की चर्चा करें परन्तु आपको राष्ट्र, से प्रेम नहीं हो सकता। आप लोग अन्य देशों को छोड़ कर न्यूज़ी-लैण्ड को ही प्रधानता नहीं दे सकते क्योंकि आप लोगों को अपने स्वार्थ का भी तो ध्यान है। अथवा मैं इस प्रकार कहूँ कि व्यापार की सच्ची स्वतन्त्रता उद्योग की उन्नति आदि तभी सम्भव है जब संसार में कोई राष्ट्रभेद न हो। मैं समझता हूं यह तो स्पष्ट ही है। जब तक प्रत्येक देश में व्यापार की रक्षा के लिये प्रतिबन्ध रहेंगे तब तक युद्ध उत्पात और विप्लव का होना अनिवार्य होगा परन्तु जब आप जाति भेद और वर्ण भेद छोड़ कर मनुष्य जाति को एक समझ कर संसार भर का प्रबन्ध करेंगे और धार्मिक सम्प्रदाय धन अथवा परिश्रम का भेद छोड़ देंगे तभी सहयोग और व्यवसाय की सच्ची स्वतंत्रता संभव है। परन्तु यह कार्य केवल उपदेश देने अथवा सभायें करने से सिद्ध न होगा। इन सिद्धान्तों से मन का विनोद कर लेना ही पर्याप्त नहीं क्रिया

चाहिये और क्रिया करने के लिये व्यक्तिगत रूप से आगे बढ़ना पड़ेगा चाहे हमें हानि ही क्यों न उठाना पड़े। हमें बोधयुक्त लोकमत का निर्माण करना पड़ेगा तभी संसार में व्यक्तित्व पिसने से अथवा शासन के अनुसार चलने को बाध्य होने से बचेगा और जीवन के विकास का साधन बन जावेगा तथा लोगों की यह भ्रष्ट और विवशता की दशा न रहेगी। प्रायः मनुष्य यह चाहते हैं और समझते हैं कि व्यवहार में अशेष परिवर्तन होना चाहिये। परन्तु इस कार्य में यदि कोई मनुष्य अग्रसर न हो तो मैं नहीं समझता कि यह कार्य कैसे सिद्ध होगा फिर परिवर्तन होजाने पर व्यक्तिगत सिद्धान्त ही संसार की दृष्टि में मान्य हो जावेंगे।

प्रश्न—मैं यह पूछना चाहता हूं कि जैसे संसार भर के प्रायः सभी ईसाई पादरी ईश्वर को पुरुष रूप मानते हैं और इसी मत की शिक्षा लोगों को प्राचीन अन्धेर के युग में दी गई थी और अभी तक दी जा रही है आप उसका क्या बुद्धि संगत अर्थ लगाते हैं? सच्चे और प्रमाणित तर्क की दृष्टि से पुरुष रूप ईश्वर की उपासना व्यक्तिगत पूजा प्रार्थना और विनती के रूप में ही होना चाहिये। संसार में जितने मनुष्य हैं सभी व्यक्ति हैं इसी प्रकार व्यक्तिगत ईश्वर काल, दिक, शक्ति, और संकल्प से अवच्छिन्न होगा और ऐसा अवच्छिन्न ईश्वर तो ईश्वर हो नहीं हो सकता जब लोगों को ऐसी मिथ्या शिक्षा दी गई है तो क्या आश्चर्य है कि संसार इस दुर्दशा में ग्रस्त है। शान्ति और गम्भीरता के साथ विचार करने से तो यही प्रतीत होता है कि सच्चा ईश्वर सत् और

असत् दोनो भावों की अद्वितीय और अनन्त सत्ता होना चाहिये। ठीक है न ?

उत्तर—आप यह क्यों जानना चाहते हैं कि ईश्वर पुरुष है अथवा स्त्री ? हमको शंका क्यों होती है ? हम क्यों जानना चाहते हैं कि ईश्वर है कि नहीं, व्यक्तिगत है कि नहीं, पुरुष है कि स्त्री ? क्या इस जिज्ञासा का यह कारण नहीं कि हमको जीवन में तृप्ति नहीं मिली। हम समझते हैं कि यदि हमें इस विशाल सत्ता का पता लग जावे तो हम अपना व्यवहार उसी के आधार पर प्रतिष्ठित करदें इस कारण हम अनुमान करने लगते हैं। कि वह सत्ता कैसी होगी अथवा कैसी होनी चाहिये और उस सत्ता का आकार अपने संकल्प विकल्प और स्वभाव विक्षेप के अनुसार कल्पित कर लेते हैं। इस प्रकार परस्पर के विरोध और संघर्ष से हम ईश्वर की मूर्ति की मनमानी कल्पना कर लेते हैं परन्तु मेरी दृष्टि में ऐसा ईश्वर पूज्य नहीं। वह तो जीवन के निरन्तर संग्राम स्वार्थ की सिद्धि जीवन का निस्सारता विरह और दुःखों से बचने का साधन है। हमारा परमेश्वर तो केवल इस प्रपंच से मुक्ति पाने का साधन है परन्तु मेरी दृष्टि में एक प्रधान सत्ता अवश्य है जिस में परमेश्वर के सब गुण हैं परन्तु अभी हम उसकी विवेचना नहीं करेंगे। यदि आप चित्त और हृदय को शीर्ण करने वाले द्वन्द्वों की आलोचना करेंगे जैसे आत्म रक्षा के लिये निरन्तर युद्ध स्वार्थ साधन की कारण क्रियार्थ संग्राम और राष्ट्रीयता तथा धार्मिक सम्प्रदायों के पाखण्ड तो आपको पता लग जावेगा। यदि

आप सन्मुख होकर विचार करें तो अनुमान के बदले प्रत्यक्ष बोध होगा और जीवन तथा परमेश्वर का यथार्थ ज्ञान आपको प्राप्त होगा ॥

प्रश्न—आप मुहम्मद को मानते हैं अथवा ईसामसीह को ?

उत्तर—क्या मैं पूछ सकता हूँ कि हम किसी को क्यों मानें ? सत्य अथवा ईश्वर का ज्ञान किसी के अनुकरण से नहीं प्राप्त होता क्योंकि तब तो हम यन्त्र के सदृश हो जाते हैं। क्या प्रत्येक मनुष्य के लिये किसी न किसी धर्म—इस्लाम ईसाई हिन्दू अथवा बौद्ध—को मानना आवश्यक है ? यदि आप किसी एक व्यक्ति को अपना गुरू अथवा आचार्य्य मान लें तो स्वार्थ का मूल उत्पन्न हो गया क्योंकि फिर आप संसार को अपने मत में लाना चाहेंगे। परन्तु यदि हम किसी को प्रमाण न मान लें परन्तु उनके अथवा किसी और मनुष्यके कथन पर विचार करेंतो हमको कुछ सच्चा ज्ञान होगा परन्तु केवल मान लेने से कोई लाभ नहीं। मैं समझता हूँ कि आप सब लोग ईसाई हैं और ईसामसीह को मानते हैं, क्या यह सच है ? क्या मनुष्य चाहे वे ईसाई हैं मुसलमान अथवा बौद्ध सचमुच अपने आचार्यों की शिक्षा के अनुसार चल रहे हैं ? यह असम्भव है, वे नहीं चलते। फिर आप लोग क्यों भिन्न उपाधियां धारण कर लोगों में व्यर्थ भेद भाव बढ़ा रहे हैं ? परन्तु जिस व्यवहार के बंधन में फंस कर हम दास बन गये हैं उसी को हम शुद्ध कर लें तो हमीं ईश्वर हो जावेंगे फिर किसी को मानने की आवश्यकता ही न रहेगी। मैं

किसी छोटे अथवा बड़े सम्प्रदाय का अनुगामी नहीं हूँ। मैंने सत्य ईश्वर अथवा उसे आप चाहे जो कुछ और कहें उसका बोध प्राप्त कर लिया है परन्तु मैं वह ज्ञान किसी को दे नहीं सकता। वह तो बुद्धि के पूर्ण विकास से ही प्राप्त हो सकता है किसी सिद्धान्त मत अथवा आचार्य के अनुसरण से नहीं॥

प्रश्न—क्या कोई बाहरी शक्ति अथवा शासन दूषित सम्प्रदाय का भी है?

उत्तर—आप जानना चाहते हैं? अर्वाचीन व्यापारी राष्ट्र-वादी और धर्मात्मा मैं इन सबको दूषित सम्प्रदाय के अंग समझता हूं क्योंकि महाशय हमीं लोगों ने संसार में ये बीभत्स दृश्य उत्पन्न किये हैं। इतने धर्म कैसे उत्पन्न हुए जो भयभीत लोगों को ठगने के साधन बन गये? इनमें इतनी घोर शक्ति कहां से आ गई? हम लोगों ने परलोक के भय से इनको मान रखा है। यह बात नहीं कि परलोक नहीं है वह दूसरी बात है। यह मत हमारी कल्पना है और इसी के चक्कर में हम फंस गये हैं। कुछ लोग इस जाल को तोड़ कर निकल गये हैं और उन्हीं लोगों में ईसामसीह बुद्ध लैनिन आदि हैं॥

वर्त्तमान समाज भी दूषित है। वह भी मनुष्यों को वश में रखने का सम्बद्ध दूषित साधन है। आप समझते हैं कि यदि मनुष्यों को स्वतन्त्र छोड़ दिया जावे तो वे भयानक हो जावेंगे और नाना प्रकार के उपद्रव करेंगे इस कारण आप कहते हैं कि हम सामाजिक नियम लोक व्यवहार मत और धर्म के द्वारा इनको

वश में रखें यही आर्थिक नीति भी है। इस प्रकार क्रमशः ये दोष स्वाभाविक प्राकृत गुण माने जाने लगे हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि हम लोगों को ऐसे ढंग की शिक्षा दी जाती है कि हम अपनी रुचि के अनुसार जीविका का व्यवसाय न चला सकें। हम लोगों को किसी न किसी काम में लगाया जाता है इस प्रकार जीवन भर हमारा काम दो प्रकार का रहता है एक तो धंधा जो १० बजे से ५ बजे तक अथवा और जो कुछ समय उसका नियत हो जिस से निर्वाह होता है और दूसरा जो उससे बिलकुल अलग है हमारा व्यक्तिगत सामाजिक घरेलू काम। इस प्रकार हम सदा द्विविधा में रहते हैं और कभी कभी यदि रुचि हुई तो दिखलाने के लिये चलन चलाने के लिये मन्दिर चले जाते हैं। जब कभी संकट उपस्थित होता है कोई बाधा आ पड़ती है व्यापार ढीला पड़ जाता है तब हम सत्य को ईश्वर को खोजने लगते हैं। तब हम सोचते हैं कि कुछ सत्य अवश्य होगा हमारा जन्म क्यों हुआ ? इस प्रकार क्रमशः हम अपने जीवन में द्वैधीभाव उत्पन्न कर लेते हैं और फिर हम छंद्मवेषी बन जाते हैं ॥

इस प्रकार का दम्भ मेरी दृष्टि में पाप है। संसार के लोगों की ओर ध्यान न देकर किसी प्रकार अपने प्राण और परिग्रह की रक्षा की चिंता में अपने स्वार्थ का साधन करने का उद्योग करना पाप है और इसके कारण सच्चा प्रेम वात्सल्य दिखाई नहीं पड़ता केवल यह स्वार्थ है जिसे हम प्रेम कहते हैं ॥

प्रश्न—क्या आप कह सकते हैं कि आप में इतनी बुद्धि कहां से आई ?

उत्तर—यह कथा बड़ी लम्बी है और मुझसे ही सम्बन्ध रखती है। पहिले तो महाशय मैं दार्शनिक नहीं हूँ मैंने दर्शन-शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया। मैं समझता हूँ कि जिसने केवल दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया उसका जीवन समाप्त हो गया। परन्तु मैं सब प्रकार के लोगों के साथ रहा हूँ और आप लोग जानते होंगे कि मुझे विशेष कार्य विशेष पद की शिक्षा दी गई थी। यह भी स्वार्थ ही है। मैं आध्यात्मिक कार्यों के लिये एक विश्व-व्यापी बड़ी संस्था का प्रधान बनाया गया था और मुझे इसमें भ्रम जान पड़ा क्योंकि आप अन्य लोगों को सत्य के मार्ग पर नहीं चला सकते। आप शिक्षा के द्वारा बुद्धि का विकास कर सकते हैं परन्तु इस बात से आचार्यों तथा उनका स्वार्थ सिद्ध करने वाले अनुष्ठानों से कोई सम्बन्ध नहीं। इस कारण मैंने वह संस्था तोड़ दी और जब मैं लोगों के साथ रहने लगा और जीवन के विषय में मेरा कोई सिद्धान्त न रहा मेरे चित्त में किसी प्राचीन मत का संस्कार न रहा तो मुझे सत्य की प्रतीति होने लगी जो मुझे सत्य जंचने लगा और लोगों को भी जो सत्य प्रतीत होता है—वह जीवन जिसमें स्वास्थ्य है बोध है मनुष्यता है जिसमें स्वार्थ नहीं है परन्तु आवश्यकतायें पूर्ण होती हैं। मैं अपनी आवश्यकताओं को जानता हूँ वे थोड़ी ही हैं इस कारण उनकी पूर्ति के लिये मैं चाहे उद्यान में धरती खोदूं अथवा व्याख्यान दूं अथवा कुछ लेख लिखूं इनमें कोई विशेषता नहीं है ॥

पहिले किसी बात को जानने के लिये तीव्र वेदना बड़ी शंका उलझन होना चाहिये संसार में बहुत कम लोग ऐसे हैं जो वेदना उत्पन्न होने पर उसे स्पष्ट करना चाहते हैं उसका अनुभव करके निदान ढूंढ़ना चाहते हैं। प्रायः लोग इसके विरुद्ध क्रिया करते हैं। यदि वे उद्विग्न हैं तो शान्ति चाहते हैं परन्तु मैं—यदि मैं अपनी बात कहूँ—जो मैं प्रतिघात नहीं चाहता था मैं जानना चाहता था और क्रमशः नाना प्रकार के तर्क करके और निरन्तर संघर्ष से मुझे उस सत्ता का अनुभव हो गया जिसे आप चाहे ईश्वर कहें अथवा सत्य कहें। मैं समझता हूं कि प्रश्न का उत्तर हो चुका॥

प्रश्न—परलोक के विषय में कुछ अपने विचार प्रगट कीजिये।

उत्तर–कैसी अद्‌भुत बात है। यह व्यापारियों की सभा समझी जाती है और इसमें परलोक ईश्वर आदि की चर्चा हो रही है। इससे सिद्ध होता है कि हम लोगों को अपने व्यापार की कोई रुचि नहीं है। यह तो हम लोगों का केवल धन कमाने का साधन है प्राणयात्रा के निर्वाह के लिये और हम लोगों की स्वाभाविक प्रवृति दैनिक व्यवहार से सर्वथा भिन्न है॥

अब परलोक की बात लीजिये। आप लोगों ने पढ़ा होगा कि यूरोप के बड़े २ विद्वान क्या कह रहे हैं कि मृत्यु के पीछे भी जीवन रहता है। कुछ लोग कहते हैं कि जीव रहता है कुछ लोग उतनी ही दृढ़ता से सिद्ध करते हैं कि नहीं। यह तो स्पष्ट ही है

कि किसी प्रकार का क्रम रहता है चाहे मरने वाले व्यक्ति का संकल्प हो अथवा विश्वात्मक चैतन्य की कल्पना इत्यादि ॥

अब यह देखना चाहिये कि यह व्यक्तिभावना क्या है। जब हम यह प्रश्न पूछते हैं कि परलोक है कि नहीं सो क्यों ? क्योंकि आप जानना चाहते हैं कि मरने के पीछे भी आप अमुक व्यक्ति बने रहेंगे कि नहीं। अथवा आप की जिज्ञासा का कारण यह है कि आप जिससे बहुत प्रेम करते थे उसकी मृत्यु हो गई। इस कारण हम यह जानना चाहते हैं कि यह व्यक्तिगत भाव क्या है ? मेरा भाई स्त्री बच्चा मैं इनका यथार्थ रूप क्या है ? जब हम किसी मनुष्य का वर्णन करते हैं वह मनुष्य क्या है ? क्या वह रूप नाम संस्कार सम्पत्ति जाति का संघात नहीं है। इसका अर्थ यह है कि वह मनुष्य समाज की इस अवस्था का केन्द्र बन गया है ॥

मैं समझता हूँ कि यह स्पष्ट हो गया। अथवा मैं यों कहूँगा। एक साधारण व्यक्ति केवल अपने अनुभव समाज धर्म नीति और आर्थिक दशा का संघात मात्र है साधारण मनुष्य यही है। ठीक है न ? वह केन्द्र अपने झगड़े वासना आशा इच्छा भय राग द्वेष सहित संघात रूप में एक व्यक्ति बन जाता है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि अमुक व्यक्ति परलोक में रहेगा कि नहीं। यह संभव है कि वह वैसा ही जीवित रहे जैसा अभी जीवित है। क्षण भर ठहरिये। इस बात में कोई विशेषता नहीं, कि है ? क्योंकि जिन्हें हम व्यक्ति समझते हैं वे तो मिथ्या दृश्य के परिणाम मात्र हैं। व्यक्तित्व की वर्त्तमान अवस्था का यह केन्द्र मिथ्या है कि

नहीं ? साधारण मनुष्य को अपनी प्राणयात्रा के निर्वाह के लिये युद्ध करना पड़ता है। संनद्ध निर्दय बनना पड़ता है उसे सभ्य ग्रामीण धनी अथवा समाज की और किसी श्रेणी में रहना पड़ता है ईसाई हिन्दू बौद्ध अथवा और कोई धर्म ग्रहण करना पड़ता है इत्यादि। यदि मुझे अपने जीवन के निर्वाह के लिये अपने पड़ोसियों के साथ निर्दयता से युद्ध करना पड़े तब तो यह दृश्य मिथ्या ही है। क्या ऐसे व्यवहार को दूषित नहीं कहेंगे ? हम लोगों में जातिभेद का विभाग करना क्या दोष की बात नहीं ? जब हम अपने को ईसाई हिन्दू मुसलमान अथवा बौद्ध कहने लगते हैं तो क्या यह अज्ञता नहीं ?

इस प्रकार इस अनुचित व्यवहार से मनमें संघर्ष उत्पन्न होता है और उस क्लेशमें मन उलझ जाता है और जीवत्व धारण कर लेता है। तब यह प्रश्न उठता है क अब क्या होगा ? अब मैं रहूँगा कि नहीं ? जैसा कि मैं कह रहा था वह सम्भव है कि लोग बने रहें परन्तु उस जीवन में आनन्द कैवल्य का बोध संसार का सुख कुछ नहीं वह तो केवल निरन्तर संग्राम है। परन्तु मनमें धर्म अर्थ और समाज के जो संस्कार संचित होगये हैं उन्हें हम समझ लें और मनको हम द्वन्द्वों से मुक्त करदें तो हमें एक भिन्न चेतन अंश का बोध होगा जो कि भिन्न प्रकार का जीव होगा और मैं कहता हूं कि वह चैतन्य अखण्ड है उसमें "मैं" और "तुम" का भेद नहीं है। वह चैतन्य तो जीवन का नित्य विकास है वहां मृत्यु का अभाव है क्योंकि

वह अनादि अनन्त है। वहां जीवन का विस्तार हो जाता है। जब तक यह मिथ्या अहंकार की भावना रहेगी तब तक मृत्यु का भी भय रहेगा और यह प्रश्न निरन्तर उठता रहेगा कि मैं बचूंगा कि नहीं। यह भय निरन्तर घातक और पीछे लगने वाला बना रहेगा॥

प्रश्न—क्या आप समझते हैं कि संसार का सामाजिक व्यवहार अन्तर्जातीय भ्रातृभाव की दशा को प्राकृतिक विकास के द्वारा स्वतः प्राप्त हो जावेगा अथवा शासन करने वाली संस्थाओं के आदेश से होगा अथवा शिक्षा के द्वारा यह संभव होगा ?

उत्तर—समाज की जैसी वर्त्तमान स्थिति है उससे अन्तर्जातीय भ्रातृत्व उत्पन्न नहीं होसकता। यह नहीं होसकता कि आप न्यूज़ीलैण्डर बने रहें और मैं हिन्दू बना रहूं और परस्पर भ्रातृत्व का व्यवहार हो। जब आप इन आर्थिक समस्याओं में उलझे हैं इस मिथ्या देशभक्ति में बँधे हैं तब वात्सल्य कैसे हो सकता है ? जब आपको अपने न्यूज़ीलैण्ड के निवासी होने का ध्यान है वहां के संस्कार आर्थिक प्रतिबन्ध स्वदेशभक्ति आदि के बंधनों में आप फँसे हैं और मुझे हिन्दू होने का भारतवर्ष का निवासी होने का और उस देश के संस्कारों का ध्यान है तो परस्पर प्रेम कैसे होसकता है ? हम लोग क्षमा की बात कर सकते हैं परस्पर अलग रहें मैं आपके देश में उपदेशक भेजूं और आप मेरे देश में उपदेशक भेजें परन्तु वात्सल्य नहीं हो सकता। जब आप ईसाई हैं और मैं हिन्दू हूँ आप एक मत को मानते हैं मैं आप एकविधिसे पूजा करत हैं मैं दूसरी विधि से तो

परस्पर प्रेम कैसे हो सकता है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आप मेरे धर्म को स्वीकार कर लें अथवा मैं आपके मत को मानने लगूं ॥

संसार की वर्त्तमान दशा में इस प्रकार भाई चारा नहीं हो सकता। परन्तु इसके विरुद्ध राष्ट्रवाद और शक्तिशाली साम्राज्य हैं जो कि केवल युद्ध के भाजन हैं। इस प्रकार जो सामाजिक संस्थायें चल रही हैं उनसे किसी महत्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि उनका मूल उनका आधार ही दूषित है और आप की राजसभाओं अथवा इन सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित शिक्षा से वात्सल्य का भाव नहीं उत्पन्न हो सकता। अपने राष्ट्र की ओर देखिये। ये क्या हैं? केवल युद्ध के ही भाजन हैं। प्रत्येक देश दूसरे देश से स्पर्धा कर रहा है दूसरे को परास्त कर रहा है और देशभक्ति का प्रचार कर रहा है। यदि आपको कुछ देशों से प्रेम है क्योंकि वे देश अन्य देशों से अधिक सुन्दर हैं तो आप सौन्दर्य के उपासक हैं। आप शोभा देख कर प्रसन्न होते हैं जैसे सूर्यास्त की शोभा देख कर आपका चित्त प्रसन्न होता है चाहे यहां हो यूरोप में हो अथवा अमेरिका में हो। इसमें जातिभेद नहीं है देशभक्ति का भाव नहीं है केवल आप के चित्त का विनोद है। देशभक्ति का भाव तभी आता है जब लोग इस विनोद से लाभ उठाने लगते हैं। और देशभक्ति से वात्सल्य कैसे प्रगट हो सकता है जब कि सम्पूर्ण शासन देशभक्ति के आधार पर प्रतिष्ठित है जब विभव सम्पन्न जातियां विभवहीन जातियों पर शासन कर रही हैं अथवा निर्धन प्रतिनिधियों को राजसभा में भेज रही हैं। निःसन्देह इस

प्रकार से मानव राज्य मानव जाति में एकता की स्थापन करना असम्भव है। यह तो इतना स्पष्ट है कि इस विषय में विवाद करने की भी आवश्यकता नहीं ॥

जब तक जाति भेद बने हैं जिनसे राष्ट्रवाद उत्पन्न हुए हैं जिनका आधार सम्पन्न लोगा की स्वार्थ सिद्धि है अथवा जिन लोगों के पास द्रव्य के निर्माण का साधन है तब तक युद्ध बने रहेंगे और संग्राम के द्वारा भ्रातृभाव सिद्ध नहीं हा सकता, यह तो स्पष्ट ही है। यूरुप के महायुद्ध का परिणाम देखिये अधिक राष्ट्रभेद अधिक ध्वजारोपण और अत्यधिक प्रतिबन्ध। इससे तो अवश्य ही वात्सल्य उत्पन्न न होगा। इससे तो वात्सल्य एक अर्थ में उत्पन्न हा सकता है कि एक दिन महान प्रलय उपस्थित होगी और लोग चौंक कर कहने लगेंगे कि ईश्वर के नाम पर अब हम लोग सावधान हो जावें और बुद्धि से काम लें अन्त में इस प्रकार प्रेम उत्पन्न हो जावे परन्तु न यह उदारता राष्ट्रभेद से उत्पन्न हो सकती है न धर्मभेद से जो यदि आप विचार करें तो विशुद्ध स्वार्थ के आधार पर प्रतिष्ठित हैं। हम सब लोग स्वर्ग में विश्राम करना चाहते हैं चाहे वह कहीं भी हो शान्त सुरक्षित निराबाध रहना चाहते हैं इस भाव को निश्चित करने के लिये हम सभा और सम्प्रदाय निर्मित करते हैं उन्हें हम धर्म कहते हैं और इस प्रकार स्वार्थ की वृद्धि करते हैं। यदि हमको इन बातों की निःसारता का यथार्थ ज्ञान हो जावे केवल तर्क की दृष्टि से नहीं परन्तु चित्त और हृदय से पूर्ण अनुभव हा जावे तो

प्रेम उत्पन्न हो जाना संभव है। यदि हम समझ जावें और बोध को व्यवहार में ले आवें तब तो स्वतन्त्र सच्ची और उचित क्रिया होगी। मैं तो यथार्थ नीति का व्यवहार उसी को कहता हूं जब हम किसी बात को निःसन्देह समझ जावें और उसी के अनुसार क्रिया करने लगें न कि जब हम परिस्थिति के द्वारा बाध्य हों अथवा जब जीवन के घोर संकट में पड़ कर हम परस्पर सौहार्द का व्यवहार करने लगें। अथवा जब व्यापारी धनी व्यवसाई यह समझने लगें कि इस भेदभाव से काम नहीं चलता अधिक लाभ नहीं होता वही स्थिति सदा नहीं रहती तो व्यवहार में ऐसा परिवर्तन करदें कि प्रत्येक व्यक्ति को भाईचारे का व्यवहार करना पड़े अभी जैसे आपको व्यवहार में स्वार्थ की सिद्धि केलिये भेद करना पड़ता है फिर आपको सहयोग करना पड़े यह तो अवश्य ही वात्सल्य नहीं है यह तो केवल स्थिति के अनुकूल कार्य है जहां मनुष्य की बुद्धि और ज्ञान का कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥

इस कारण बुद्धि के अनुसार क्रिया करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्र होकर नीति के अनुसार काम करना चाहिये तब ऐसी संस्था का निर्माण होगा जो स्वार्थवादियों का सच्चा विरोध कर सकेगी। परन्तु इस काम के लिये बड़ी बुद्धि और बड़ा कौशल चाहिये और इस क्रिया का आरम्भ प्रत्येक व्यक्ति अपने ही व्यवहार से कर सकता है। आप अपने ही उद्यान का प्रबन्ध कर सकते हैं अपने पड़ोसी के उद्यान का नहीं॥

प्रश्न—कृपा कर स्पष्ट कहिये। क्या यह सम्भव है कि हमें आपके समान सत्य का बोध हो जावे हम लोग स्वार्थ को त्याग

दें और फिर भी व्यापार में लगे रहें अथवा हमें अपना व्यवसाय छोड़ना पड़ेगा ? क्या यह सम्भव है कि आप व्यापार भी करते रहें और अपने सिद्धान्त पर भी आरूढ़ रहें ?

उत्तर—महाशय मैं प्रश्न को टाल नहीं रहा हूँ। मैं बिलकुल स्पष्ट कहूँगा। जैसी प्रथा आजकल चल रही है उसको देखते हुए तो यही जान पड़ता है कि यदि आप किसी निर्जन द्वीप में जाकर न बसें जहां अपना भोजन आपही बनावें और सब काम करलें तो स्वार्थ सिद्ध करना पड़ेगा। ठीक है न ? यह तो स्पष्ट ही है। जब तक व्यवहार का आधार परस्पर प्रतियोग आत्मरक्षा और परिग्रह है तब तक स्वार्थ चलता ही रहेगा। परन्तु क्या भय का त्याग करने से अपनी आवश्यकताओं को जान लेने से अथवा अपनी तृप्ति कर लेने से आप इस आधार से मुक्त नहीं हो जाते ? यद्यपि आप व्यापार में लगे रहें तथापि इस प्रकार वर्त्तने से आपकी आवश्यकतायें बहुत कम हो जाती हैं परन्तु यदि आप के चित्त और हृदय में तृष्णा बनी रहे तो आप की वांछा बहुत बढ़ जाती है। फिर यदि कोई मनुष्य सचाई पर दृढ़ बना रहे सर्वथा स्पष्ट व्यवहार करे और किसी प्रकार का छल मन में न रखे तो जो मैंने कहा है उससे उसके स्वार्थ की पुष्टि हो सकती है। मुझे व्यापार करने में कोई व्यक्तिगत आपत्ति नहीं है परन्तु मेरे लिये यह आयोजन व्यर्थ है क्योंकि मुझे व्यापार करने की कोई आवश्यकता नहीं। इस कारण केवल शुष्कवाद से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? मैं धनी नहीं हूँ परन्तु मैं बुद्धिसंमत न्याय्य कर्म करना

चाहता हूँ क्योंकि मेरी आवश्यकता बहुत थोड़ी है और मुझे पिस जाने का डर नहीं है। जब हमें हानि का भय होता है—आश्रय की हानि का भय अर्थ हानि का भय—तभी हम युद्ध करते हैं। परन्तु यदि आपके पास कोई परिग्रह नहीं यदि आप सर्व त्याग करने को प्रस्तुत हैं तो फिर स्वार्थ नष्ट हो गया। यह बात सुनने में तो उपहास के योग्य बुद्धि के विपरीत असभ्य और प्राकृत जान पड़ती है परन्तु यदि आप ध्यान देकर विचार करें यदि आप कुछ काल तक मन लगा कर सोचें तो आपका मेरा कथन बिलकुल प्रलाप न जान पड़ेगा। अज्ञानी ही निरन्तर अपनी वासनाओं के वश में रहता है ज्ञानी मनुष्य नहीं। वह विषयों में आसक्त नहीं होता क्योंकि उसका हृदय परिपूर्ण है इस कारण उसकी बाहरी वासनायें बहुत थोड़ी हैं। हम लोग अवश्य ऐसे समाज की स्थापना कर सकते हैं जो केवल आवश्यक कामनाओं के आधार पर प्रतिष्ठित हो और जिसमें विज्ञापन देकर स्वार्थ सिद्ध करने की आवश्यकता न पड़े। मैं समझता हूँ कि आप के प्रश्न का उत्तर हो गया॥

प्रश्न—व्याख्यान दाता से किसी प्रकार के लाभ की आशा से उनकी प्रशंसा न करके भी मैं उन्हें दार्शनिक परोपकार का श्रेष्ठ आचार्य समझता हूँ परन्तु मेरी बड़ी इच्छा है कि वे आज इसी समय अपने श्रोताओं को यह बतला दें कि जिस सत्य के युग की आशा निःसन्देह वे तथा संसार के और सब मनुष्य कर रहे हैं उसके विषय में उनकी क्या धारणा है ?

उत्तर—महाशय पूर्ण सत्य के युग का यह अर्थ होगा कि जंगली मनुष्य भी औरों के समान बुद्धिमान हो जावेगा उसकी दशा भी औरों की दशा के समान ही पूर्ण हो जावेगी । जिसका अर्थ यह हुआ कि संसार में निवास करने वाले सभी मनुष्य एक ही क्षण में एक ही समय पर सब सुखी हो जावें । यही सत्ययुग है न ? हमारा अभिप्राय यही होता है जब हम इस विषय की चर्चा करते हैं। ठीक है । क्षण भर ठहरिये । क्या यह संभव है ? निस्सन्देह यह संभव नह । हमारा अभिप्राय सत्य युग के आगमन से उस समय का है जब आदर्श प्रत्यक्ष हो जावे और सभ्यता अपने उच्चतम शिखर पर पहुंच जावे । वह तो एक मनुष्य के समान हो गई जो अपने जीवन को एक निश्चित आदर्श के समान बनाना चाहता है और शिखर पर पहुँचना चाहता है। ऐसे मनुष्य की क्या गति होती है ? उसकी बाँछा और बढ़ जाती है और दूसरा आदर्श उसके सन्मुख उपस्थित हो जाता है । इस कारण वह शिखर पर कभी नहीं पहुँच पाता। परन्तु जब मनुष्य वासना से रहित हो जाता है सिद्धि नहीं चाहता उन्नति का उत्सुक नहीं रहता परन्तु सदा निःसंकोच स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता हैं तो उसका व्यवहार जिसका प्रभाव समाज पर भी पड़ेगा किसी शिखर पर नहीं पहुँचेगा । उसका प्रवाह निरन्तर चलता रहेगा इस कारण वेग बढ़ता रहेगा परन्तु उसका कभी अन्त न होगा ॥

शुद्धा-शुद्ध पत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	२६	२८
२	१५	प्रश्ना	प्रश्नों
३	१६	लदणों	लक्षणों
,,	२०	व्याख्यान	व्याख्यान
५	७	ासद्धान्तों	सिद्धान्तों
,,	६	इहीं	इन्हीं
८	२	बादां	वादों
६	४	अनुयामी	अनुयायी
६	१३	अभीष्ठ	अभीष्ठ
,,	६	का	को
,,	७	समाजिक	सामाजिक
,,	१०	अधार	आधार
,,	१२	अधार	आधार
,,	१५	अधार	आधार
१०	१०	वे कि	वे
,,	१६	प्रतिष्ठत	प्रतिष्ठित
१०	२२	सिद्धांत	सिद्धान्त
११	३	धाराणाओ	धारणाओं
१२	२	ाक	कि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	३	किसा	किसी
,,	७	भिन्न	भिन्न २
१७	१	पत्रा	पत्रों
१७	४	नहां	नहीं
,,	१०	हा	हो
१८	३	लाग	लोग
,,	१२	प्रवत्त	प्रवृत्त
१६	६	प्रतिवाद	प्रतिवाद
,,	१६	स	से
२३	१६	शाखाय	शाखायें
२८	६	आपका	आपको
३१	६	धर्मः	धर्म
,,	१५	हाना	होना
३३	१०	हिन्दी	हिन्दू
३५	८	यहा	यही
३८	१	कर	करें
,,	६	प्रम	प्रेम
३६	५	हा	हो
,,	२०	हमका	हमको
४१	१५	किसा	किसी
४१	२२	कल्पनाआ	कल्पनाओं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२	५	राक	रोक
४३	५	हृदय	हृदय
४५	२२	पएय	पुएय
४६	२२	कि मन नहीं	कि नहीं
४७	१	और हृदय	मन और हृदय
५१	६	पूर्	पूर्ण
५६	११	दृष्टि	दृष्टि
,,	१७	ज्ञय	ज्ञेय
,,	२०	आप्क्षेप	आक्षेप
५९	३	निणय	निर्णय
,,	६	ब्रह्म विद्मा	ब्रह्म विद्या
६२	१९	हारा उ देश	तुम्हारा उपदेश
,,	२०	चाहि	चाहिये
६३	१६	लाक	लोक
६५	१२	समस्याआ	समस्याओं
६६	८	शक्तिया	शक्तियों
६७	२२	का	की
६८	१	स्वाथ	स्वार्थ
,,	,,	क्याकि	क्योंकि
६९	१	वद्य	वैद्य
७०	१२	समाज का	समाज को

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७१	२०	कल्पनाआ	कल्पनाओं
७३	१	सत्य	सत्य है
७३	१२	आ	आप
७७	१	म	में
७७	३	का	को
७८	३	हा	ही
,,	२०	ऐस	ऐसे
७६	१६	जसे	जैसे
८०	१६	का ण	कारण
८३	८	सन्मुख	मुख में
८८	७	हा	हो
,,	६	कष्ट को	कष्ट की
८६	३	होग	होगा
६१	११	वन	बने
६२	११	चक्कर	चक्कर में
६३	२०	सत्य	सत्य अथवा
१००	१६	मित्रा	मित्रो
१०३	२०	बता दे	सच्चा उपाय बतादे
१०४	१२	यहि	यदि
१०६	१३	राष्ट	राष्ट्र
१०७	७	आप लोगों	और लोगों

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	१	करने	करते
११०	२२	नहा	नहीं
१११	१	हागी	होगी
,,	२२	का	की
११२	२०	अववा	अथवा
११३	१२	जिस	उस
११६	२१	लिये जहां	लिये
१२०	११	सभा में	सभायें
,,	२०	हा	हो
१२२	५	दूसर	दूसरा
१२६	१२	भायनायें	भावनायें
१२६	१३	अंधरे	अंधेरे
,,	१६	ईश्वर हो	ईश्वर ही
१३०	१५	स्वाथ	स्वार्थ
,,	१६	हदय	हृदय
१३१	७	हाता	होता
१३३	१८	आर	ओर
१३४	६	।कया।	किया
१३५	२०	रहत	रहता
१३८	१	वस्तार	विस्तार
१३८	१०	क	की

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
〃	२३	करत	करते
१३६	१२	ेशभक्ति	देशभक्ति
१४१	११	को सिद्धि	की सिद्धि
१४२	८	आपका	आपको

सिर्फ टाइटिल "न्यू आर्डर प्रेस" कानपुर में छपा ।

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित १५ वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५ नये पैसे प्रतिदिन के हिसाब से बिलम्ब दण्ड लगेगा।
